



# प्राचीन काव्य कलाधर

## मूल, व्याख्या तथा समीक्षा





# प्राचीन काव्य कलाधर

(मूल पाठ, कठिन शब्दों का सरल अर्थ, सरल व्याख्यायें, साहित्यिक टिप्पणियाँ तथा प्रश्नों के विस्तृत व विशद उत्तर)

—राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष हिन्दी साहित्य के छात्रों के लिए—


लेखिका :

श्रीमती ऊषा जैन, एम. ए.



मूल्य : 10·00

राज प्रकाशन मन्दिर

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

चौड़ा रास्ता, जयपुर–3

# विषय-सूची

# कबीर

## साखी

**साहब मेरा एक है दूजा कहा न जाय।**
**दूजा साहेब जब कहूँ साहेब खरा रिसाय ।।1।।**

**शब्दार्थ**—साहब = ईश्वर । खरा = खड़ा । रिसाय = क्रोध में हो जाय ।

**व्याख्या**—ईश्वर एक है इस मत को व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं कि मेरा ईश्वर तो एक ही है, दूसरा नहीं कहा जा सकता । अगर मैं दूसरा कह दूँ, मान लूँ, तो मेरा ब्रह्म रूठकर क्रोधित हो जायेगा ।

**जाके मुँह माथा नहीं नाही रूप कुरूप ।**
**पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त्व अनूप ।।2।।**

**शब्दार्थ**—माथा = सिर । पुहुप = पुष्प । पातरा = पतला । अनूप = अनुपम ।

**व्याख्या**—ब्रह्म के रूप का बखान करते हुए कबीर कहते हैं कि उसके मुँह नहीं है, उसके सिर नहीं है, न ही वह रूपवान, न ही कुरूप है। वह तो पुष्प की सुगन्ध से भी पतला है। वह ऐसा अनुपम तत्व है ।

**देहि माँहि विदेह है साहेब सुरति सरूप ।**
**अनंत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप ।।3।।**

**शब्दार्थ**—देही = शरीर । सरूप = रूपवान । अनंत = सीमा रहित ।

**व्याख्या**—ब्रह्म के अस्तित्व व आकार के बारे में कबीर कहते हैं कि वह प्राणियों की देह में आत्मा स्वरूप विदेह होकर विराजमान है, स्मरण से ही उसका आकार स्पष्ट है । वह अनंत संसार में बिना रंग और रूप के अर्थात् निराकार रूप में व्याप्त है ।

**जनम मरन से रहित मेरा साहेब सोय ।**
**बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय ।।4।।**

**शब्दार्थ**—पीव = प्रिय, ब्रह्म । सिरजा = बनाया ।

**व्याख्या**—विश्व निर्माणकर्त्ता के प्रति कबीर की आत्मा पुकार-पुकार कर कह रही है कि मेरा प्रिय ब्रह्म तो जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त है, मैं तो उस प्रियतम पर बार-बार बलिहारी हूँ, जिसने सबका निर्माण किया है ।

**विशेष**—ईश्वर के प्रति श्रद्धा-भाव व्यक्त किया गया है, क्योंकि आवागमन के बन्धन से वही मुक्ति दिला सकता है ।

**एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।**
**है जैसा तैसा रहै कहै कबीर विचारि ।।5।।**

**शब्दार्थ**—दोय = दो। गारि = गाली।

**व्याख्या**—ब्रह्म की प्रकृति के बारे में कबीर कहते हैं कि उसको एक रूप कहूँ तो यह सत्य नहीं और कह दूँ तो गाली निकालना हो जावेगा। भाव यह है कि ब्रह्म एक तत्व होते हुए भी संसार नाना रूपों में व्याप्त है, अतः दो रूप हुए। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है। अतः वह जैसा है वैसा ही है।

**विशेष**—ब्रह्म न तो साकार स्वरूप ही है और न निराकार स्वरूप ही।

**साहेब सो सब होत है बंदे तें कुछ नांहि।**
**राई ते पर्वत करे पर्वत राई मांहि ।।6।।**

**शब्दार्थ**—साहेब = ईश्वर। बंदे = सेवक, मनुष्य।

**व्याख्या**—ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसके करने से ही सब कुछ होता है, मनुष्य के करने से कुछ भी नहीं होता। ईश्वर असंभव को भी संभव कर देता है, वह राई को पर्वत कर देता है और पर्वत को राई में विलीन कर देता है।

**जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नांहि।**
**कहो कही जो मैं किया तुम ही थे मुझ मांहि ।।7।।**

**व्याख्या**—ईश्वर के सर्वशक्तिमान गुण के बारे में कबीर कहते हैं कि जो कुछ भी कारणीय था, थह आपने ही किया मैंने कुछ भी नहीं किया, दूसरों के कही-कही जो कुछ मैंने किया है, उस समय मेरे में तुम ही कर्त्ता रूप थे।

**विशेष**—व्यक्ति की देह में आत्मा स्वरूप परमात्मा ही विद्यमान रहता है।

**जंत्र मंत्र सब झूँठ है मत भरमो जग कोय।**
**सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय ।।8।।**

**शब्दार्थ**—भरमो = भ्रमित होना। सार = मुख्य। कागा = कौआ, पापी। हंस = मुक्तात्मा।

**व्याख्या**—ढोंगी लोगों के बारे में कबीर कहते हैं कि संसार में जो तंत्र-मंत्र साधते हैं व उसका प्रभाव बताते हैं, यह सब झूँठ है, इसमें किसी को भ्रमित नहीं होना चाहिए। तत्व ज्ञान (ईश्वर नाम) को जाने बगैर कोई भी कौआ रूपी पापात्मा हंस रूप मुक्तात्सा को प्राप्त नहीं कर सकता।

**विशेष**—तंत्र-मंत्र से मोक्ष नहीं मिल सकता।

**ज्ञान दीप परकास करि भीतर भवन जराय।**
**तहां सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय ।।9।।**

**शब्दार्थ**—भीतर = हृदय। सतनाम = ईश्वर। सुमिर = स्मरण कर। समाधि = ध्यान।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि हृदय भवन में ज्ञान रूपी दीमक का प्रकाश करके, इश्वर को ऋजो और सहज समाधि लगाओ अर्थात सहज समाधि से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

**औगुन की तो ना गहै गुन ही को ले बीन।**
**घट-घट महके मधुप ज्यों परमातम ले चीन ॥10॥**

**शब्दार्थ**—गहै = ग्रहण करना । बीन = चुनना । महके = सुगन्धित । चीन = पहचानना ।

**व्याख्या**—ईश्वर तत्व की पहचान करने के सम्बन्ध में कबीर कहते हैं कि संसार में अवगुणों को छोड़ देना चाहिए और गुणों को चुन लेना चाहिए। घट-घट में पुष्प की सुगन्ध के समान परमात्मा निवास करता है तू उसे पहचान ले।

**भक्ति भेस बहु अन्तरा जैसे धरनि अकास।**
**भक्त लीन हरि चरन में भेव जगत की आग ॥11॥**

**शब्दार्थ**—भेस = बनावटी रूप । अन्तरा = अन्तर । धरनि = धरती । लीन = तनमय ।

**व्याख्या**—वेश आडम्बर के बारे में कबीर कहते हैं कि भगवत भक्ति और आडम्बर वेश रूप में भक्ति भाव का दिखावा; दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। भक्त तो हरि चरणों में तन्मय रहता है और वेशभूषाधारी झूठे जगत की आशा लगाये रहता है। अर्थात सच्चा भक्त ही ईश्वर को पा सकता है।

**देखा देखि भक्त का कबहूँ न चढ़सि रंग।**
**विपति पड़े यों छाँड़िसी ज्यों केंचुली भुजंग ॥12॥**

**शब्दार्थ**—विपत्ति = संकट । भुजंग = सर्प ।

**व्याख्या**—अनुकरण कर्त्ता नकली भक्तों के बारे में कबीर कहते हैं कि दूसरे की देख, भक्त हो जाना ठीक नहीं है। इससे भक्ति का रंग नहीं चढ़ेगा। वह तो उस भक्ति को विपत्ति के समय वैसे ही छोड़ देगा जैसे समय विशेष पर सर्प केंचुली को छोड़ देता है।

**उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।**
**तिनका तिनके से मिला तिनका तिनके पास ॥13॥**

**शब्दार्थ**—बबूला = चक्रवात । तिनका = तृण, आत्म तत्व । तिनके = ब्रह्म तत्व । तिनका = उसका ।

**व्याख्या**—आत्मा का परमात्मा में लीन होने के भाव को समझाते हुए कबीर कहते हैं कि ईश्वर प्रेम-रूपी चक्रवात उठा, उसमें आत्मा रूपी तिनका उड़कर आकाश (मिलन स्थिति) में पहुँचा। वहाँ आत्मा रूपी तृण परमात्मा रूपी तृण से मिल गया, तृण तृण के पास चला गया अर्थात् आत्म-तत्व ब्रह्म-तत्व से मिल गया।

**विशेष**—आत्मा और परमात्मा के एकत्व की ओर संकेत किया गया है।

**सौ जोजन साजन बसैं मानो हृदय मँझार ।**
**कपट सनेही आंगने जानु समुन्दर पार ।।14।।**

**शब्दार्थ**--जोजन = योजन, बहुत दूर । साजन = प्रिय, ईश्वर । मंझार = मध्य में ।

**व्याख्या**—सांसारिक जीव की स्थिति का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि हृदय के मध्य में सौं योजन पर प्रिय ईश्वर का निवास है और आत्मा रूपी कपटी प्रेमी यहाँ ससार रूपी आँगन में बैठा है, वह संसार रूपी सागर को पारकर वहाँ कैसे पहुँचेगा ।

**विशेष**—सच्चा ईश्वर प्रेमी ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है ।

**मिलना जग में कठिन है मिलि बिछड़ी जनि कोय ।**
**बिछुड़ा सज्जन तेहि मिले जिन माथे मनि होय ।।15।।**

**शब्दार्थ**--जनि = मत । माथे मनि = सिर पर मणि हो, अर्थात् भाग्यशाली हो ।

**व्याख्या**—आत्मा परमात्मा का बिछोह का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि इस संसार में रहते हुए आत्मा का परमात्मा से मिलन कठिन है, इसलिए कोई भी मिलकर मत बिछुड़े । बिछुड़े हुए तो कोई भाग्यशाली सज्जन ही मिल पाते हैं, अर्थात् ईश्वर मिलन तो भाग्यशाली का ही होता है ।

**जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।**
**बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं ।।16।।**

**शब्दार्थ**—लगि = तक ।

**व्याख्या**--ईश्वर प्रेम घर की दूरी का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि जब तक मरने से (अहं नष्ट करने से) डरेगा तब एक ईश्वर का प्रेमी नहीं हो सकता । ईश्वर प्रेम का घर बहुत दूर है यह मन में भली भाँति समझ लो अर्थात् सांसारिक प्राणी ईश्वर प्रेमी नहीं हो सकता है ।

**विशेष**—जब तक व्यक्ति अहंकार, घमंड को नहीं त्याग देगा, ईश्वर से नहीं मिल पायेगा ।

**हरि जन से तू हेत कर कर हरिजन से हेत ।**
**माल मुलुक हरि देत है हरिजन हरिहीं देत ।।17।।**

**शब्दार्थ**--हेत कर = प्रेम कर । माल मुलुक – धन दौलत ।

**व्याख्या**—कबीर ईश्वर और गरीब आदमी दोनों से प्रेम करने पर बल देते हुए कहते हैं कि तू इश्वर से भी प्रेम कर और गरीब से भी प्रेम कर क्योंकि ईश्वर तो धन-दोलत देता है जबकि गरीब आदमी का प्रेम तो ईश्वर को ही मिला देता है ।

**विशेष**—प्रेम के महत्व को व्यक्त किया गया है ।

**कबीरा माला काठ की बहुत जतन का फेर ।**
**माजा स्वाँस उसांस की जामें गाँठ न मेर ।।18।।**

**शब्दार्थ**—काठ = लकड़ी । जतन = यत्न । मेर = सुमेरु, माला समाप्ति सूचक मणियाँ ।

**व्याख्या**—शरीर में श्वास प्रक्रिया का सदुपयोग करने हेतु कबीर कहते हैं कि काठ की माला को यत्न पूर्वक फेरो अर्थात इस शरीर में स्वांस-निश्वास रूपी माला जिसमें न कोई गांठ रूपी बाधा है और न ही माला समाप्ति सूचक सुमेरु है, अतः इसे यत्न से फेर । भाव यह कि ईश्वर का नाम बिना बाधा के लेता जा । क्योंकि मानव-जन्म पुनः प्राप्त होना कठिन है ।

**कबिरा क्या मैं चितहूँ मम चिते क्या होय ।**
**मेरी चिंता हरि करें चिन्ता मेरी न कोय ।।19।।**

**शब्दार्थ**—चितहु = चिंता करना । मम = मेरे । हरि = भगवान ।

**व्याख्या**—ईश्वर पर विश्वास रखते हुए कबीर कहते हैं कि मैं किसी भी प्रकार की चिंता क्यों करूँ और फिर मेरे चिन्ता करने से होगा भी क्या क्योंकि मेरी तो हरि को चिन्ता है, इसलिए मेरे को कोई चिन्ता नहीं है । अर्थात भगवत् भक्त का जीवन ईश्वर के प्रति समर्पित रहता है, अतः कोई चिन्ता भाव मन मे नहीं है ।

**साधू गांठिन बांधई उदर समाता लेय ।**
**आगे पीछे हरि खड़े जब मांगे तब देय ।।20।।**

**शब्दार्थ**—गांठि = भारी संग्रह । उदर = पेट । हरि = भगवान ।

**व्याख्या**—साधु की अपरिग्रह प्रकृति के बारे मे कबीर कहते हैं कि साधु को अपने पेट में समाये इतना ही लेना चाहिए अधिक की चाह नहीं करनी चाहिए क्योंकि साधु के निकट तो ईश्वर खड़ा रहता है वह जब भी कुछ मांग करेगा उसकी पूर्ति ईश्वर कर देगा ।

**विरह बान जेहि लागिया औषध लागत न ताहि ।**
**सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै उठै कराहि-कराहि ।।21।।**

**शब्दार्थ**—औषध = औसधी । ताहि = उसके । सुसुकि-सुसुकि = सिसक-सिसक कर ।

**व्याख्या**—विरहिणी आत्मा का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि जिसके परमात्मा बिछुड़न रूपी विरह बाण लग गया है, उसकी कोई दवा नहीं है । वह उस विरह में सिसक-सिसक रुदन कर मरणासन्न हो जाता है और विरह पीड़ा से कराहता हुआ जीवित रहता है । अर्थात् बिरहिणी आत्मा को बहुत कष्ट सहना पड़ता है ।

**सर्पहि दूध पिलाइए सोई विष ह्वै जाय ।**
**ऐसा कोई ना मिला आपे ही विष खाय ।।22।।**

**शब्दार्थ**—सर्प = साँप । विष = जहर ।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं इस संसार में सर्प को दूध पिलाया जाये तो वह दूध भी विष हो जाता है, ऐसा कोई नहीं मिलता जो स्वयं ही उस विष को भी खा जाये। अर्थात् दोष मिटाने वाला कोई नहीं है, ईश्वर ही मानव दोषों को मिटा सकता है।

**एक समाना सकल में सकल समाना नांहि।**
**कबीर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नांहि ॥23॥**

**शब्दार्थ**—इक = आत्मा। सकल = संसार। बूझ = ज्ञान।

**व्याख्या**—परमात्मा की सर्व व्यापकता का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि आत्मा परमात्मा नामक तत्व में समाहित है, परमात्मा कहीं सीमित क्षेत्र में नहीं समाता, वह सर्वत्र व्याप्त है। मैं तो ज्ञान में समा गया हूँ जहाँ दूसरा कोई नहीं समा सकता।

**कथनी मीठी खाँड-सी करनी विष की लोय।**
**कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ॥24॥**

**शब्दार्थ**—खाँड = शक्कर। लोय = लपट। तजि = छोड़कर।

**व्याख्या**—कथनी और करनी के भेद को समझाते हुए कबीर कहते हैं कि कथनी तो शक्कर के समान मीठी है सो कोई भी अपना लेता है परन्तु करनी जहर की लपट के समान है उसे कोई नहीं अपनाता। अगर व्यक्ति कथनी को छोड़ कर करनी में विश्वास करे तो विष भी अमृत हो सकता है।

**विशेष**—करनी के महत्व को बताया गया है।

**कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोय।**
**सो कहता बहि जान दे नहिं गहता होय ॥25॥**

**शब्दार्थ**—गहता = स्वीकार करने वाला। कहता = केवल कथनी। बहि जात = नष्ट होना।

**व्याख्या**—कथनी और करनी के सन्दर्भ में कबीर कहते हैं कि इस संसार में कथनी वाले तो बहुत मिलते हैं परन्तु किसी बात को ग्रहण करने वाले, अपनाने वाला कोई नहीं मिला अतः जो मात्र कथनी में विश्वास करने वाला है, ग्रहण करने वाला न हो उसे नष्ट हो जाने दो, उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

**जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखे नांहि।**
**सुनै सो समझावै नहीं रसना दृग श्रुति कांहि ॥26॥**

**शब्दार्थ**—रसना = जिह्वा। दृग = आँख। श्रुति = कान।

**व्याख्या**—कबीर ईश्वर की लीला के वर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहते हैं कि देखने की शक्ति तो नेत्रों में है पर उसमें कहने की शक्ति नहीं है जबकि कहने की शक्ति जिह्वा में है और कानों में न देखने की शक्ति है और न कहने की शक्ति है। कैसी अद्भुत लीला है ईश्वर की।

**मैं मरजीवा समुँद का डुबकी मारी एक।**
**मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक ॥27॥**

**शब्दार्थ**—मरजीवा = गोताखोर। मूठी = मुट्ठी।

**व्याख्या**—ज्ञान की महिमा बताते हुए कबीर कहते हैं कि मैं समुद्र का गोताखोर हूँ। मैंने एक डुबकी लगाई और मुट्ठी में ज्ञान रूपी मोती पाया, उसी में अनेक वस्तुएँ मिल गई। भाव यह कि ज्ञान प्राप्ति से सर्व सुख मिल जाते हैं।

**मरते मरते जग मुआ औरस मुआ न कोय।**
**दास कबीरा यों मुवा बहुरि न मरना होय ।।28।।**

**शब्दार्थ**—मुआ = मर गया। औरस = अवसर से। मुवा = मरा। बहुरि = फिर।

**व्याख्या**—जन्म मरण के बन्धन से मुक्त कबीर कहते हैं कि संसार में जीवात्मा हर बार मरती है परन्तु अवसर देखकर कोई नहीं मरती। कबीर ऐसे अवसर से मरा कि पुनः संसार में मरने के लिए नहीं आया। अर्थात् भक्ति से मोक्ष प्राप्त कर ली। आवागमन के बन्धन से मुक्त हो गया।

**जा मरने से जग डरे मेरे मन आनन्द।**
**कब मरिहों कब पाइयों पूरन परमानन्द ।।29।।**

**व्याख्या**—मृत्यु पर ईश्वर मिलने की उमंग के सम्बन्ध में कबीर कहते हैं कि जगत् मरने से डरता है जबकि मेरे मन में आनन्द व्याप्त है क्योंकि जगत् तो मरने पर नरक में जायेगा बरन्तु मैं मरने पर पूरण परमात्मा से मिलूँगा और आनन्द मग्न रहूँगा। मृत्यु मेरे लिए आनन्द देने वाली है।

**रोड़ा भय तो क्या भय पंथी को दुख देय।**
**साधू ऐसा चाहिए ज्यों पंडे की खेह ।।30।।**

**शब्दार्थ**—रोड़ा = पत्थर। पंथी = राहगीर। पैंड़े = रास्ता। खेह = मिट्टी।

**व्याख्या**—साधु की नम्रता का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि रास्ते का पत्थर बन जाने से कोई लाभ नहीं, वह तो पथिक को दुःख ही देता है. साधु को तो रास्ते की धूल के समान होना चाहिए। जो बार-बार रौंदने पर भी प्रतिवाद नहीं करती।

**विशेष**—साधु की प्रकृति का वर्णन किया गया है।

**खेह भई तो क्या भया उड़ि-उड़ि लागै अंग।**
**साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपंग ।।31।।**

**व्याख्या**—साधु प्रकृति के बारे में कबीर कहते हैं कि साधु रास्ते की धूल हुआ तो कुछ नहीं हुआ, क्योंकि धूल उड़-उड़ कर दूसरों के अंगों पर लग जाती है, साधु तो सागर के नीर के समान निर्मल स्वभाव वाला होना चाहिए।

**विशेष—साधु प्रकृति का चित्रण।**

**नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय।**
**साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय ।।32।।**

**शब्दार्थ**—नीर = पानी। ताता-सीरा = गर्म-ठण्डा। हरि = भगवान।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि साधु अगर पानी जैसा निर्मल हो गया तो भी कुछ विशेष बात नहीं है, क्योंकि पानी भी गर्म और ठण्डा होता रहता है। साधु तो भगवान के समान ही होना चाहिए।

**विशेष**—साधु प्रकृति का वर्णन किया गया है।

**कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।**
**और बूंद को ना गहै स्वाति बूंद की आस ॥33॥**

**शब्दार्थ**—गहै = ग्रहण करना। स्वाति = नक्षत्र विशेष। आस = आशा।

**व्याख्या**—कबीर दासजी कहते हैं कि समुद्र की सीप प्यासी मरती रहती है और स्वाति जल को रटती रहती है। उसे दूसरी जल बिन्दु से कोई मतलब नहीं, वह तो स्वाति-नक्षत्र की बूँद की ही आशा लगाये रहती है। भाव यह कि भक्त आत्मा परमात्मा के दर्शन रूपी मुक्ति की ही कामना करती है।

**पपिहा का मान देखकर धीरज रहै न रंत।**
**मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥34॥**

**शब्दार्थ**—धीरज = धैर्य। रंत = थोड़ा सा। तऊ = तब भी। बोरी = डूबोना। चंच = चोंच।

**व्याख्या**—ईश्वर मिलन के प्रण को भक्त अन्य प्रलोभन में नहीं छोड़ता है। कबीर कहते हैं कि स्वाति बूँद की आशा में प्यासे पपीहे के मन को देखकर तो मन में धैर्य नहीं रहता (ईश्वर मिलन की उत्कंठा बढ़ती ही है) वह मरते समय जब पानी में गिरता है फिर भी अपनी चोच को पानी में नहीं जूबोता। अर्थात् पृथ्वी पर गिरे हुए जल का आचमन नहीं करता।

**गुरु सिकलीगर कीजिये मनहिं मस्कला देय।**
**मन की मैल छुड़ाई कै चित्त दरपन करि लेय ॥35॥**

**शब्दार्थ**—मस्कला = मुलम्मा।

**व्याख्या**—गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि सद्गुरु सिकलीगर जैसा होना चाहिए जो मन के मैल को छुड़ाकर, उस पर प्रकाश रूपी मुलम्मा चढ़ा दें, जिससे चित्त-दर्पण के समान चमकने वाला हो जाय।

**विशेष**—गुरु ही शिष्य के दुर्गुण मिटा सकता है।

**गुरु धोबी सिष कपड़ा साबुन सिरजन हार।**
**सुरति सिला कर धोइये निकसे जोति सपार ॥36॥**

**शब्दार्थ**—सिष = शिष्य। सिरजनहार = ईश्वर। जोति = ज्ञान ज्योति।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि गुरु धोबी के समान होना चाहिए जो अज्ञान मैल से युक्त शिष्य रूपी कपड़े को ईश्वर रूपी साबुन लगाकर, सुरति रूपी शिला पर धोकर ज्ञान रूपी अपार ज्योति को निखार दें।

**विशेष**—गुरु महिमा का वर्णन।

**नीर पियावत का फिरै घर-घर सायर बारि ।**
**तृषावत जो होइगा पीवैगा झख मारि ।।37।।**

**शब्दार्थ**—नीर = पानी, ज्ञान उपदेश । सायर = सागर । बारि = बावड़ी ।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि जो गुरु अपने शियों को घर-घर जाकर ज्ञान का उपदेश पिलाते हैं, यह व्यर्थ है । प्रत्येक प्राणी के घर में ज्ञान रूपी सागर, बावड़ी विद्यमान है जिनको ज्ञान की प्यास होगी वह अपने आप साधना द्वारा ज्ञान रूपी जल का आचमन कर अपनी प्यास बुझा लेगा ।

**सब बन तो चंदन नहीं सूरा का दल नाहिं ।**
**सब समुद्र मोति नही यों साधू जग माहिं ।।38।।**

**शब्दार्थ**—सूरा = शूरवीर ।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि सब बनों में चंदन वृक्ष नहीं होते, शूरवीर समूह में नहीं मिलते, सारे समुद्रों में मोती नहीं मिलते । वैसे ही सर्वजन साधु नहीं होते, भाव यह कि महत्वपूर्ण चीजें, हर समय हर जगह समूह में नही प्राप्त होती । भाव यह कि साधु जगत में दुर्लभ है ।

**संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर ।**
**नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर ।।39।।**

**शब्दार्थ**—संगत = संगती । हिरदा = हृदय । नौ नेजा = नौ भाले तक, बहुत ऊँचाई तक ।

**व्याख्या**—साधु संगत से अप्रभावित व्यक्ति के संदर्भ में कबीर कहते है कि साधु संगत करने से क्या लाभ, क्योंकि हृदय तो कठोर है, प्रभावहीन है । उसे संगती रूपी पाने में नौ नेजा तक डूबोने के बाद भी हृदय का किनारा भी न भीग सकता अर्थात् वह दुष्ट प्रकृति का है उसका हृदय नहीं बदल सकता ।

**हरिया जाने रूखड़ा जो पानी का नेह ।**
**सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह ।।40।।**

**शब्दार्थ**—रूखड़ा = वृक्ष । नेह = स्नेह । बूठा = बरसना ।

**व्याख्या**—कबीर कहते हैं कि हरित वृक्ष ही ओस के जल का स्नेह जानता है । वह ओस से ही हरा हो जाता है, जबकि घनीभूत वर्षा होने पर भी सूखे काठ पर फरक नहीं पड़ता, वह हरा नहीं होता । वह पानी के स्नेह को नहीं जानता । भाव यह कि कठोर हृदय मानव पर स्नेह का प्रभाव नहीं पड़ता ।

**माला तिलक लगाई के भक्ति न आई हाथ ।**
**दाढ़ी मूँछ मुँड़ाई के चले दुनी के साथ ।।41।।**

**व्याख्या**—बाह्य आडम्बर का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं कि गले में माला धारण की, तिलक लगाया परन्तु फिर भी भक्ति हाथ में नहीं आई । दाढ़ी मूँछ मुँडवाकर दुनियाँ के साथ चले फिर भी मक्ति प्राप्त नहीं हुई । भाव यह कि बाह्य आडम्बर से भक्ति अमृत प्राप्त नहीं होता ।

**बाँबी कूटें बावरे साँप न मारा जाय।**
**मूरख ! बाँबी ना डसै सर्प सबन को खाय ॥42॥**

**शब्दार्थ**—बाँबी = बिल। डसै = डस जाना।

**व्याख्या**—अज्ञानी व्यक्ति की प्रकृति के बारे में कबीर कहते हैं कि हे बावले! सर्प तो तेरे से मरता नहीं है और तू फालतू में ही बिल को पीट रहा है। हे मूरख! यह बिल किसी को भी नहीं डसता है, सर्प ही सबको खा जाता है, अतः विषय-तृष्णा रूपी सर्प को ही मारना चाहिए।

**दीन गंवायो संग दुनी दुनी न चाली साथ।**
**पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥43॥**

**शब्दार्थ**—दीन = धर्म, कर्त्तव्य। दुनी = दुनियाँ।

**व्याख्या**—सासांरिक मोह में फँसे जीव का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि दुनियाँ के साथ लगकर तूने अपने धर्म को गँवाया, परन्तु दुनियां तुम्हारे साथ नहीं गई। इसलिए हे मूरख! तूने दुनियाँ से प्रेम करके अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी क्यों मार रहा है। भाव यह कि दुनिया के मोह छोड़ने पर ही ईश्वर प्राप्ति हो सकती है।

**मैं भँवरा तोहिं बरजिया बन बन बास न लेय।**
**अटकेगा कहुँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देह ॥44॥**

**शब्दार्थ**—बरजिया = मना किया। वास = सुगन्ध, विषय वासना।

**व्याख्या**—सांसारिक विषय वासना में उलझे जीव का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि जीव! मैंने तुझे पहले ही मना किया था कि इस बन रूपी संसार में घूम घूम कर विषय तृष्णा रूपी सुगन्ध न लें। कहीं ऐसा न हो जाय कि मोह बेल में उलझ कर तड़फ-तड़फ कर प्राण देना पड़े।

**उदर समाता अन्न लै तनहि समाता चीर।**
**अधिकहिं संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥45॥**

**शब्दार्थ**—उदर = पेट। चीर = वस्त्र।

**व्याख्या**—फकीर की गुण-प्रवृत्ति का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि सच्चा फकीर वही कहलायेगा जो पेट में समाये उतना ही अन्न लें, शरीर पर पहने उतने ही कपड़े ले, और अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करें।

**विशेष**—फकीर को अपरिग्रह प्रवृत्ति का होना चाहिए।

**जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।**
**दोनों कबहूँ ना मिलै रवि रजनी इक ठाम ॥46॥**

**शब्दार्थ**—नाम = प्रतिष्ठा। रवि = सूर्य। रजनी = रात्रि।

**व्याख्या**—यश लिप्सा के बारे में कबीर कहते हैं कि काम करने वाले होते हैं उनको नाम प्रसिद्धि की भूख नहीं रहती और जहाँ नाम कमाने की भूख है वहाँ काम

नहीं होगा। यह दोनों एक स्थान पर सूर्य और रात्रि के समान नहीं मिल सकते। यश लिप्सा विहीन व्यक्ति ही उत्तम कार्य कर सकता है।

**आब गई आदर गया नैनन गया सनेह।**
**ये तीनों तब ही जबहिं कहा गया कछु देय ॥47॥**

**शब्दार्थ**--आब = प्रतिष्ठा। आदर = सम्मान। सनेह = स्नेह। देय = देना।

**व्याख्या**—माँगने की कुप्रवृत्ति का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि अगर व्यक्ति ने किसी से कुछ माँगने के लिए हाथ फैला दिया तो प्रतिष्ठा-सम्मान और नेत्रों का स्नेह तीनों खत्म हो जाते हैं। इसलिए किसी से कुछ नहीं माँगना चाहिए।

**प्रभुता को सब कोउ भजे प्रभु को भजे न कोय।**
**कह कबीर प्रभु को भजे प्रभुता चेरी होय ॥48॥**

**शब्दार्थ**--प्रभुता = वैभव, हुकूमत। चेरी = दासी।

**व्याख्या**---कबीर कहते हैं कि संसार में ईश्वर के वैभव को तो सब पूजते हैं, परन्तु ईश्वर को कोई नहीं पूजता है। अगर ईश्वर की ही पूजा की जाये तो वैभव मानव का दास बन जायेगा। अतः ईश्वर को कभी नहीं भूलना चाहिए।

**कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।**
**जो जग की आसा करै जगत गुरु वह दास ॥49॥**

**शब्दार्थ**---तजै = छोड़ना। दास = शिष्य।

**व्याख्या**---जोगी के चरित्र गुण के सम्बन्ध में कबीर कहते है कि जगत की मिथ्या आशा को त्याग दें, वही योगी जगत का गुरु होता है। जोगी अगर जगत की आशा करने लग जायेगा तो जगत उसका गुरु हो जायेगा और योगी उसका दास बन जायेगा।

**विशेष**---जोगी लक्षण को व्यक्त किया गया है।

**माया छाया एक सी बिरला जानै कोय।**
**भगतां के पीछे फिरै सनमुख भागै सोय ॥50॥**

**शब्दार्थ**---बिरला = कोई। सनमुख = सम्मुख।

**व्याख्या**---माया के प्रभाव का वर्णन करते हुए कबीर कहते है कि माया और छाया का सुख एक सा होता है यह कोई बिरला ही जानता है। वह भगवद् भक्त के पीछे पड़ी रहती है और जब बस नहीं चलता तो भाग खड़ी होती है। अर्थात् भक्त माया के वशीभूत नहीं होता।

**विशेष**---माया के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

# कबीर

## पद

(1)

**माया महा ठगिनि हम जानी।**
**तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोले मधुरी बानी॥**
**केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।**
**पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी॥**
**योगी के योगिनी ह्वै बैठी राजा के घर रानी।**
**काहू के हीरा ह्वै बैठी काहु के कौड़ी कानी॥**
**भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।**
**कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥**

**शब्दार्थ**—तिरगुन = तीन गुण—सत्, रज और तम। फाँसि = फँदा। कर = हाथ। कमला = लक्ष्मी। केशव = विष्णु। भवानी = पार्वती। कोड़ी-कानी = गरीबी। अकथ = न कहने योग्य।

**व्याख्या**—माया के विस्तार व महत्व का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि मैंने यह भली प्रकार जान लिया है कि माया महान ठगोरी है। यह अनेक प्रकार से व्यक्तियों व देवताओं को धोखा देती है। माया अपने हाथ में सत्य, रज व तम नामक तीनों गुणों की फाँस को लिये हुए बड़ी मधुर वाणी बोलती हुई भ्रमण करती रहती है और प्राणियों को अपने जाल में फँसाती रहती है। वह नाना रूप धारण कर अपना जाल फैलाती है। माया विष्णु के यहाँ लक्ष्मी बनकर, शिवजी के यहाँ विश्व-माता पार्वती बनकर, पंडे और पुरोहित के यहाँ मुर्त्ति बन कर, धार्मिक तीर्थ-स्थलों में पानी (पवित्र जल) बन कर, जोगी लोगों के जोगिनी बन कर, राजाओं के यहाँ रानी बन कर बैठी है। किसी के यहाँ हीरे-जवाहरात अर्थात् धन सम्पत्ति का रूप धारण कर लेती है और किसी के यहाँ गरीबी का रूप धारण कर लेती है। भक्तों को ठगने के लिये माया भक्तिन बन जाती है और ब्रह्मा को फंसाने के लिये ब्रह्मानी बन जाती है। कबीर कहते हैं कि हे भाई साधुओं! तुम अच्छी तरह सुन व समझ लो कि इस माया के रूपों और विस्तार की कहानी इतनी विस्तृत है कि मुँह से कही भी नहीं जा सकती है।

**विशेष**—(1) माया के नाना रूपों का चित्रण किया गया है।

(2) माया के प्रभाव से सांसारिक प्राणी तो क्या देवता भी नहीं बच सकते हैं।

(3) माया के प्रभाव का वर्णन किया गया है।

( 2 )

हंसा करो पुरातन बात,
कौन देस से आया हंसा, उतरना कौन घाट।
कहाँ हँसा बिसराम किया है, कहाँ लगाये आस ।।
अब ही हंसा चेत सवेरा, चलो हमारे साथ ।।
संसय-सोक वहाँ नहिं व्यापै, नहीं काल के त्रास ।।
हिआँ मदन-बन फूल रहे हैं, आवे सोहं बास।
मन भौंरा जिहँ अरुझ रहे हैं, सुख की ना अभिलास।

**शब्दार्थ**—हंसा = विशुद्ध चैतन्य जीव। पुरातन = पुरानी। वहाँ = सत्य लोक। हिआँ = मृत्यु लोक। मदन-बन = कामदेव का वन। सोंऽहं = ब्रह्म के साथ जीवन की अभिन्नता। अरुझ = उलझा हुआ।

**व्याख्या**—जो जीव सत्य लोक से आया था वह यहाँ मृत्यु लोक में फँस गया है। कबीर उसे उपदेश देते हुए कह रहे है कि हे हंसा! पुरानी बात का स्मरण करो। तुम्हें पता है तुम कहाँ से आये थे और किस स्थान पर आकर उतरे हो तथा कहाँ विश्राम पा रहे हो। अर्थात् तुम अपने सत्य लोक को भूल गये हो। अब ज्ञान रूपी सबेरा हो गया है, सावधान हो जाओ और हमारे साथ चलो उस लोक में (सत्य लोक) संशय-शोक आदि नहीं सताते हैं, और न ही काल का भय रहता है। तुम यहाँ संसार में कामदेव के बने में (विषय-वासनाओं में) फूलों को देखकर प्रसन्न हो रहे हो और उन फूलों की सुगन्ध को ही सोंऽहं की सुगन्ध मान रहे हो। अर्थात् ब्रह्म के साथ एकाकार से उत्पन्न आनन्द मान रहे हो, यह तेरा भ्रम ही है। कबीर कहते हैं कि मन रूपी भौरा इस संसार रूपी-वन में उलझा रहा है यहाँ सुख की आशा नही की जा सकती।

**विशेष**—(1) रूपक अलंकार।

(2) क्षण भंगुर व विषय-वासनाओं से पूर्ण संसार में जीव की भटकाव स्थिति का वर्णन व सत्य लोक प्राप्ति का उपदेश दिया गया है।

( 3 )

दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम्।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है
कहो तो दूसरा किस तरह होयम् ।।
उसी का फेर के नाम लहर धरा
लहर के कहे क्या नीर खोयम्।
जक्त ही फेर जब जक्त परब्रह्म में
ज्ञान कर देख माल गोयम् ।।

**शब्दार्थ**—दरियाव = समुद्र। लहर = तरंग। जक्त = जगत। फेर = जन्म बदलना।

**व्याख्या**—जगत और ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं कि समुद्र और समुद्र की लहर में कोई भेद नहीं है, केवल नाम और रूप का भेद है। इसी प्रकार जगत और ब्रह्म में भेद नहीं है। जगत ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही जगत है। समुद्र का पानी स्वाभिक रूप में उठता है, लहर के रूप में वह भी पानी है और लहर के मिटकर बैठ जाने पर, पानी में ही मिलती है। पानी के दूसरे रूप का नाम लहर है, क्या लहर में पानी नहीं है? इसी प्रकार ब्रह्म का फेर (रूप) है वही जगत है। दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। कबीर कहते हैं कि इस भेद का ज्ञान करके देखो। अर्थात् जगत-ब्रह्म एक ही तत्व है।

**विशेष**—(1) जगत और ब्रह्म के अभेद तत्व की ओर संकेत किया है।

(2) जगत ब्रह्म का ही दूसरा रूप है। जगत को मिथ्या कहने वालों को कबीर का यह करारा जवाब है।

( 4 )

**जहाँ खेलत बसन्त रितुराज**
**जहाँ अनहद बाजा बजै बाज।**
**चहुँ दिसि जोति की बहै धार**
**बिरला जन कोइ उतरै पार॥**
**कोटि कृष्ण जहँ जोड़े हाथ**
**कोटि विष्णु जहँ नावैं माथ॥**
**कोटिन ब्रह्मा पढ़ें पुरान**
**कोटि महेश धरैं जहँ ध्यान॥**

**शब्दार्थ**—चहुँ दिसि = चारों दिशाओं। जोति = ज्योति। बिरला = मुश्किल से कोई एक कोटि-करोड़ों। नावैंमाथ = सिर नवाते हैं।

**व्याख्या**—सत्य लोक का वर्णन करता हुआ कबीर कहता है कि जो कुछ ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में भी विद्यमान है। साधक सहज समाधि द्वारा सत्य लोक का आनन्द अनुभव करता है। इस सत्य लोक में नित्य बसन्त वर्तमान है वहाँ किसी प्रकार का विवाद नहीं है, वहाँ अनहद का वाद्य यन्त्र बजता रहता है, वहाँ प्रकाश की ऐसी धारा बहती है कि कठिनाई से कोई इस धारा को पार कर सकता है। कोटि-कोटि कृष्ण, विष्णु जहाँ हाथ जोड़े खड़े रहते हैं, कोटि-ब्रह्म पुराण पढ़ते रहते हैं, कोटि महेश जहाँ ध्यान मग्न रहते हैं ऐसा है सत्यलोक।

**विशेष**—सत्यलोक का वर्णन। ब्रह्म की सत्ता के समक्ष सब नत मस्तक रहते हैं।

( 5 )

मन, तू पार उतर कहँ जैहो ।
आवे पंथी पंथ न कोई, कूच-मुकाम न तैही ।
नहिं तहँ नीर, नाव नहिं खेवट, ना गुन खैंचनहारा ।
धरनी-गगन-कल्प कछु नाहीं, ना कछु वार न पारा ।

**शब्दार्थ**—कहँ जैहौ = कैसे जायेगा । मुकाम = स्थान, गन्तव्य । खेवट = नाव को खेने वाला । कल्प = समय की इकाई ।

**व्याख्या**—सत्यलोक में जाना सहज नहीं है । जीवात्मा अपने को ही अहं में ब्रह्म मानकर अपने रूप को भूल जाती है । जीवात्मा को सत्य मार्ग का निर्देश देते हुए कबीर कहते हैं कि हे मन ! तू इस भव सागर मे सत्य लोक में कैसे पार उतरेगा । हे जीवात्मा रूपी भ्रमित पंथी ! आगे कोई रास्ता नहीं है, न गन्तव्य स्थान का तेरे को ज्ञान है, जहाँ जाना है । न वहाँ पानी है, न नाव है, न केवट है और न ही नाव के वह रस्सी है जिसे खेंची जाती है । वहाँ न धरती है, न आकाश है, न कल्प है अर्थात् समय सूचक आधार नहीं है । न वहाँ कोई रास्ता है, तू कैसे पार जावेगा ।

**विशेष**—सत्यलोक का अलौकिक वर्णन किया गया है और सांसारिक जीवात्मा को भ्रम का चित्रण किया गया है ।

( 6 )

परमातम गुरु निकट विराजैं
जाग जाग मन मेरे ।
धाय के पीतम चरनन लागै
साईं खड़ा सिर तेरे ।
जुगन जुगन तोहि सोवत बीता
आजहु न जाग सबेरे ।

**शब्दार्थ**—परमातम गुरु = परमात्मा रूपी गुरु । जाग = जग सा । धाय = दौड़कर । साईं = स्वामी । सोवत = सोना, नींद में ।

**व्याख्या**—कबीर मन को जगाते हैं और समझते हैं कि परमात्मा रूपी गुरु निकट ही है तू जागकर, अज्ञान को छोड़कर उनकी शरण में चल स्वामी, ईश्वर सिर पर खड़ा है, तू दौड़कर प्रेमपूर्वक उनके चरणों में लग जा, अपने को समर्पित कर दे । अज्ञान वश तू युगों-युगों से सोया पड़ा है, अब ज्ञान का प्रकाश हो गया है, प्रातः काल हो रहा है तू जाग, नींद को छोड़ दें ।

**विशेष**—कबीर अज्ञान को छोड़ परमात्मा रूपी गुरु की शरण में जाने के लिए अपनी आत्मा को प्रेरित करते हैं । पद में रूपक अलंकार है ।

( 7 )

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है।
लखत लखत लख परै, कटै जम फन्द है ॥
कहन-सुनन-कछु नाहिं। नहीं कछु करन है।
जीते जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है ॥
जोगी पड़े बियोग, कहैं घर दूर है ।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है।
बाह्मन दिच्छा देता घर घर घालिहै ।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै ॥
ऐसन साहब कबीर सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप पुन्न नहिं पाप है ॥

**शब्दार्थ**—घर घर दीपक = प्रत्येक व्यक्ति में भगवान की ज्योति लख परै = दिखाई देना। जीते जी मरि = जीते जी मरना अर्थात् इच्छा द्वेष से रहित। हजूर = ईश्वर। दिच्छा = दीक्षा। घालि है = चौपट करना। मूर = जड़ी बूटी। पाहन = पत्थर। सलोना = सुन्दर।

**व्याख्या**—परमात्मा घर-घर में व्याप्त है, यौगिक क्रियाओं के बिना भी उसे सहज समाधि से पाया जा सकता है। कबीर कहते हैं कि घर-घर में दीपक जलता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भगवान की ज्योति है, जो उज्ञानी हैं, अंधे हैं उन्हें दिखाई नहीं देता। अगर कोई साधक इस ज्योति को घर में देखने का अभ्यास करता है, उसे वह ज्योति अवश्य दिखाई देती है और जम का फन्दा (आवागमन चक्र) कट जाता है। इस हेतु न कुछ कहना है न कुछ सुनना और न ही कुछ करना है अर्थात् यौगिक क्रियाओं को नहीं करना है। करना केवल यह है कि जीते जी मर जाना है अर्थात् अपने मन को इच्छा-द्वेष से मुक्त कर लेना है, फिर कभी नहीं मरना है अर्थात् संसार में न जन्म धारण करोगे न मरोगे। कबीर फिर कहते हैं कि साधक जोगी ब्रह्म के वियोग में पड़े हैं, और कहते हैं, उसका घर बहुत दूर है, जबकि परमात्मा तो निकट ही हृदय में बसते हैं और वे खजूर पर चढ़ने को (समाधि लगाने को) कहते हैं। पंडित ब्राह्मण अपने शिष्यों को दीक्षा मंत्र देते हैं, उससे तो उनका घर चौपट ही होगा क्योंकि ईश्वर संजीवनी बूटी तो पास ही है और वह पत्थर की मूर्ति को पूजन की बात कहता है, जो व्यर्थ है। कबीर कहते हैं कि मेरा साहब (ईश्वर) ऐसा सुन्दर है कि उसे पानी के लिये न जोग की, न जप की, न पुण्य की, न पाप की ही जरूरत है, यह तो सहज ही मिलता है।

**विशेष**—(1) ब्रह्म की ज्योति घर-घर में व्याप्त है।

(2) सहज समाधि से ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है, समाधि आदि व्यर्थ है।

( 8 )

साईं बिन दरद करेजे होय ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासे कहूं दुख होय ।
आधी रतियाँ पिछले पहरवा, साईं बिना तरस रही सोय ।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साईं मिले सुख होय ।,

**शब्दार्थ**—साईं = ईश्वर । करेजे = कलेजा । पहरवा = पहर ।

**व्याख्या**—आत्मा, परमात्मा प्रियतम से बिछुड़ वियोग में व्याकुल है । विरहिणी आत्मा का चित्रण करते हुए कबीर कहते हैं कि स्वामी के बिना मेरे कलेजे में दर्द हो रहा है । प्रियतम के बिना रात-दिन चैन नहीं पड़ता है न ही नींद आती है । इस व्यथा को मैं किससे कहूँ । कोई सुनने वाला ही नहीं है । आधी रात, पिछले पहर में स्वामी के अभाव में तरसती हूँ अर्थात् रात्रि के अन्तिम पहर तक नींद नहीं आती है । कबीर कहते हैं कि आत्मा इतनी दुःखी है कि उसका दुःख प्रिय, ईश्वर के मिलने पर ही मिटेगा, सुख प्राप्त होगा ।

**विशेष**—विरहिणी आत्मा का चित्रण ।

( 9 )

जोगि दिगम्बर सेवड़ा, कपड़ा रँगे रँग लाल से ।
वाकिफ नहीं उस रंग से, कपड़ा रँगे से क्या हुआ ।।
मन्दिर झरोख-रावटी, गुल चमन में रहते सदा ।
कहत कबीरा है सही हर-दम में साईं ब रम रहा ।।

**शब्दार्थ**—जोगी = योगी । दिगम्बर = नागा साधु । सेवड़ा = श्वेताम्बर जैन साधु । वाकिफ = जानकर । उस रंग = ईश्वर प्रेम-रग । रावटी = बारह दरी । गुल-चमन = गुलाब के फूलों का बगीचा । हरदम = हर समय ।

**व्याख्या**—नाना पंथी लोग जो ईश्वर भक्ति-प्रेम से अनभिज्ञ हैं, उन्हें फटकारते हुए कबीर कहते हैं कि योगी, दिगम्बर, श्वेताम्बर वे साधु जो नाना प्रकार के कपड़े रंगकर पहनते हैं । वे लाल रंग में भी कपडे रंगते हैं. जो ईश्वर की भक्ति का प्रतीक माना जाता है । परन्तु ईश्वर प्रेम रंग के यह साधक जानकार ही नहीं हैं, फिर कपड़े रंग-रंग कर पहनने से क्या लाभ । अर्थात् नाना मत-मतांतर के लोग रंग-बिरंगी पोशाक पहनते हैं परन्तु कोई ईश्वर को नही जानता । यह पाखण्डी मन्दिर' झरोखा व बारहदरी में निवास करते हैं, गुलचमन का आनन्द प्राप्त करते हैं । कबीर कहते हैं कि ऐसे व्यवहार से ईश्वर नहीं मिलता । वह तो हर समय हर जगह उपस्थित रहता है । जो सहज भाव से ईश्वर की प्रेम भक्ति में डूब जाता है, उसे वह मिल जाता है ।

**विशेष**—नाना पथ के लोगों द्वारा प्रतीक वेश आडम्बर का चित्रण किया है ।

( 10 )

भक्ति का मारग झीना रे ।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे ।
साधन के रस-धार में रहे निस-दिन भीना रे ।
राग में स्रुत ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे ।
साँई सेवत में देत सिर, कुछ बिलम न कीना रे ।
कहे कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे ।

**शब्दार्थ**—झीना = बहुत बारीक, महीन । लीना = तन्मय । भीना = भीना हुआ । रस-धार=आनन्द । बिलम = विलम्ब । मत = सिद्धान्त ।

**व्याख्या**—भक्ति का महत्व बताते हुए कबीर कहते हैं कि भक्ति का मार्ग बहुत बारीक है, उसमें सासारिक, पाखण्डी जीव प्रवेश नहीं कर सकता । इस मार्ग में वही प्रवेश करता है जो समभाव को अपनाता है और ईश्वर के चरणों में भक्तिभाव से तन्मय रहता है । साधु-सज्जनों की सेवा में रात दिन लगा रहता है । ईश्वर की बिना किसी विलम्ब से सिर देता हो अर्थात् समर्पित होता हो । इन गुणों से युक्त साधक ही भक्ति द्वार में प्रवेश कर सकता है । कबीर कहते हैं कि भक्ति का यही मार्ग है, इसे मैंने प्रकट भी कर दिया ।

( 1- )

जब मैं भूला रे भाई ।
मेरे सतगुरु जुगत लखाई ।
किरिया-करम-अचार छांड़ा तीरथ का न्हाना ।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना ।
ना मैं जानूँ सेवा-बंदगी, ना मैं घंटा बजाई ।
ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई ।

**शब्दार्थ**—जगत = युक्ति । किरिया = करम-अचार = क्रिया-कर्म व्यवहार । न्हाना = स्नान । सयानी = चतुर । बौराना = ईश्वर प्रेम पागल । मूरत = मूर्ति । पुहुप = पुष्प ।

**व्याख्या**—संसार में भ्रमित मन को सतगुरु ने रास्ता बताया है, इसी को व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं कि जब से संसार में भटक गया था तब मेरे सतगुरु ने इश्वर प्राप्ति की युक्ति बताई मैंने क्रिया कर्म के आधार को छोड़ दिया और नाना तीर्थों में स्नान करना भी छोड़ दिया है । सारी दुनियाँ बड़ी चालाक है, जो अपने-अपने कार्य में मग्न है, मैं ही एक ऐसा था जो ईश्वर न मिलने के कारण पागल होकर भटकता था । दुनियाँ से नाना प्रकार के आडम्बर हैं, उनको मैं क्या जानूँ—न तो मैं किसी की सेवा करना ही जानता हूँ, न मैं मन्दिर में सेवाभाव से

घण्टा बजाना जानता हूँ। न ही मैंने मन्दिर में किसी मूर्त्ति को सिंहासन पर बैठा-कर, सेवा कर उसको फूलों से सजाया है अर्थात् इस प्रकार के आडम्बर मेरे से नहीं होते। मैं तो उन सतगुरु का आभारी हूँ जिन्होंने ब्रह्म प्राप्ति की युक्ति बताई।

**विशेष**—(1) गुरु महिमा का वर्णन किया है।

(2) आडम्बरों का विरोध किया गया है।

( 12 )

**साइं से लगन कठिन है भाई।**

जैसे पपीहा प्यासा बूँद का, पिया पिया रट लाई।
प्यासे प्राण तड़फै दिन-राति, और नीर ना भाई।
जैसे मिरगा शब्द-सनेही, शब्द सुनन को जाई।
शब्द सुनै और प्राणदान दे, तिनको नाहि डराई।
जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।
पावक देख डरे वह नाहीं, हंसत बैठे सदा भाई।
छोड़ो तन अपने को आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भई साधो, नाहि तो जनम् नसाई।

**शब्दार्थ**—साँई = ईश्वर। लगन = प्रेम लग्न। कठिन = कठोर। भाई = अच्छा लगना। मिरगा = मृग। सत = सत्य। पावक = अग्नि। नसाई = त्याग दो, नष्ट कर दो।

**व्याख्या**—ईश्वर से प्रेम करना बहुत कठिन है. इसके प्रेम से भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं—यह हर किसी के वश की बात नहीं है—ईश्वर मिलन की लग्न मन में लग जाने पर जीवन बड़ा कठोर हो जाता है. जैसे पपीहा स्वाती नक्षत्र के पानी हेतु पिया-पिया रटता है. दिन रात वह उस पानी हेतु तड़फता रहता है अन्य पानी का सेवन नहीं करता है. प्यासा ही मरता रहता है वैसे ही हरि मिलन, की लग्न लगने पर भक्त की स्थिति हो जाती है। मृग मधुर ध्वनि का प्रेमी भी होता है, शिकारी द्वारा मधुर बंशी की ध्वनि सुन कर प्राण देने को तैयार हो जाता है मृत्यु से तनिक भी नहीं डरता है, और अपने प्राण दे डालता है अर्थात् मधुर ध्वनि वश शिकारी उसे मार डालता है। सत्यवती स्त्री प्रिय प्रेम के वशीभूत हो सत का पालन कर आग से न डर कर हँसते-हँसते अपने शरीर को जला कर प्राण न्यौछावर कर देती है अर्थात् प्रिय प्रेम के वशीभूत हो प्राण त्याग देती है। कबीर कहते हैं, अपने प्रिय से मिलने वालों की यही गति होती है। इसलिए तुम भी अपने शरीर की आशा छोड़ दो और निर्भय हो ईश्वर के वे गुण गाओ, अगर ऐसा नहीं कर सकते तो यह मानव का जन्म धारण करना ही व्यर्थ है, यह ऐसे ही नष्ट हो जायेगा।

**विशेष**—(1) ईश्वर के प्रति प्रेम आसक्ति का चित्रण किया गया है।

(2) अपने प्रिय से मिलने वालों का जीवन बड़ा कठोर होता है।

( 13 )

मन ना रँगाये रँगाये जोगी कपड़ा ।
आसन मारि मन्दिर में बैठे
ब्रह्म-छाँड़ि पूजन लागे पथरा ।।
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा ।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले
काम जराय जोगी होय गैले हिजरा ।।
मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रंगौले,
गीता बाँच के होय गैले लबरा ।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बाँधल जैबे पकड़ा ।।

**शब्दार्थ**—छाँडि = छोड़कर । पथरा = पत्थर अर्थात् मूर्त्ति पूजा । कनवा = कान । बढौले = बढ़ाना । धुनिया रमौले = धूनी रगाइ । लबरा = झूठा । गैले = गया ।

**व्याख्या**—आडम्बरों का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं कि जोगी ने कपड़े रंगाकर पहन लिये हैं इससे कुछ नहीं होना है । जब तक ईश्वर भक्ति में अपना मन नहीं रंग लेंगे तब तक इन बाहरी दिखावे से ईश्वर नहीं मिलेगा । जोगी आसन लगाकर मन्दिर में बैठ गया है और ब्रह्म को छोड़कर पत्थर की मूर्ति को पूजने लगा है, कान को चीरकर कुण्डल धारण कर लिया है, जटा बढ़ा ली हैं, दाढ़ी को बढ़ा कर बकरा हो गया । अर्थात् खूब आडम्बर बना लिया है । जोगी जंगल में जाकर धुनी रमा रहा है, काम को जलाकर हिजडा हो गया है, अर्थात् गहस्थ धर्म से डर कर भाग गया है । इससे तो गृहस्थ ही अच्छा । एक जोगी ने अपने सिर को मुँडवा कर भमवा रंगाकर पहन लिया है और नियमित गीता का पाठकर पक्का झूठा, धोखेवाज हो गया है । कबीर कहते हैं कि यह सब पाखण्डी हैं, आडम्बरों में जीते हैं, इनको यमदूत पकड़कर बाँधकर ले जायेंग अर्थात् इनका उद्धार नहीं हो सकता ।

**विशेष**—(1) बाह्य आडम्बरों का विरोध किया गया है ।
(2) नाना मत-मतान्तरों के मानने वालों को फटकारा है ।

( 14 )

ना हरि रीझैं जप तप कीन्हें, ना काया के जारे ।
ना हरि रीझैं धोती छांड़े, ना पाँचों के मारे ।
दया राखि धरम को पालें, जग सो रहे उदासी ।
अपना-सा जिव सबको जानै, ताहि मिलै अविनासी ।
सहै कुशब्द बाद को त्यागै, छांड़े गर्ब-गुमाना ।
सत्त नाम ताहि को मिलिहै कहै कबीर सुजाना ।।

**शब्दार्थ**—रीझै = प्रसन्न होना । जारे = जलाने पर । पाँचों = पाँच इन्द्रियाँ । पालै = रक्षा करे । अविनासी = ईश्वर । बाद = विवाद । सुजाना = जानकार ।

**व्याख्या**—ईश्वर प्राप्ति के नाना प्रकार के थोथे साधनों का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं कि ईश्वर जप-तप करने से प्रसन्न नहीं होता और न कठिन साधना कर शरीर को नष्ट करने से । न ही शरीर से सारे वस्त्र त्यागने से और नहीं पाँचों इन्द्रियों को मारने से, नष्ट करने से । यह सब करना व्यर्थ है । ईश्वर को प्रसन्न करने का मार्ग तो दूसरा है—मन में दया भाव रखे, धर्म की रक्षा करें, संसार से उदासीन रहे (विषय-वासना में न पड़े) अपने प्राणों के समान दूसरों के प्राणों को समझे अर्थात् किसी प्राणी को न सतावे तब अविनाशी ईश्वर मिल सकता है । कबीर कहते हैं—अगर कोई कुशब्द कहे तो उसे भी सहन करे, गर्व और घमण्ड का त्याग करें उसी को सतनाम ईश्वर मिलता है ।

**विशेष**—जनहितार्थ, परोपकारी को ईश्वर मिलता है । जप-तप करने वालों को नहीं ।

(15)

**पंडित बाद बदै सो झूठा ।**
**राम के कहे जगत गति पावै खांड कहे मुख मीठा ।।**
**पावक कहे पांव जो दाहै जल कहे तृषा बुझाई ।**
**भोजन कहे भूख जो भागै तो दुनिया तरि जाई ।।**
**नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहि जानै ।**
**जो कबहुँ उड़ि जाय जंगल को तौ हरि सुरति न आनै ।।**
**बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई ।**
**धन के कहे धनिक जो होतो निरधन रहत न कोई ।।**
**साँची प्रीत विषय माया सों हरि भगतन की हाँसी ।**
**कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ।।**

**शब्दार्थ**—वाद = विवाद । पावक = अग्नि । तिषा = प्यास ।

**व्याख्या**—पाखण्डी को फटकारते हुए कबीर कहते हैं कि हे पण्डित ! जो कोरा वाद-विवाद करते हैं वे झूठे हैं । 'राम' मात्र कहने से अगर दुनिया मोक्ष पा जाये तो 'खांड' मात्र कहने से मुख क्यों नहीं मीठा होता । अग्नि कहने से पैर क्यों नहीं दग्ध होता जल कहने से प्यास क्यों नहीं बुझ जाती और यदि भोजन कहने मात्र से भूख भागे तो सभी कोई राम कहने मात्र से भव-सागर से तर जायेंगे । मनुष्य के साथ तोता भी 'हरि' बोलता है यद्यपि वह हरि का परताप नहीं जानता है क्योंकि जब कभी वह उड़कर जंगल में चला जाता है तो पुनः मन में हरि नाम की स्मृति को नहीं लाता । तुझे सच्ची प्रीति विषयों और माया से है और हरि भक्त से हँसी आती है । कबीर कहते हैं कि तुझे हरि के प्रति प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है और तू बंधा हुआ यमपुर को जायेगा ।

विशेष—1. रूढ़िवादी पण्डित को ललकारा है।

(16)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कमल दल चरखा डोलै पाँच तत्त गुन तीन चदरिया।
साँई को सियत मास दस लागे, ठीक ठीक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जगत से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।

शब्दार्थ—झीनी = बारीक। चदरिया = शरीर रूपी चादर।

व्याख्या—शरीर रूपी चादर के निर्माण की प्रक्रिया समझाते हुए कबीर कहते हैं कि इस शरीर रूपी चादर को बहुत बारीकी से बनाया हैं। कबीर प्रश्न करते हैं—इस चादर को बनाने के लिए ताना किसका बनाया गया और भरनी किसकी बनाई व तार किसका बनाया गया ? उत्तर है कि इंगला-पिंगला का ताना और भरनी बनाई। सुषुम्मा का तार बनाया गया। (अर्थात् ईडा-पिंगला-सुषुम्मा तीन नाडियाँ) अष्ट दल कमल का चरखा बनाया और पाँच तत्व और तीन गुणों से ब्रह्म ने दस महीने में इसे ठोक-ठोककर बनाया अर्थात् भली-भाति बनाया। इस शरीर रूपी चादर को देवता, मनुष्य व बड़े-बड़े मुनियों ने ओढ़ा है परन्तु इसे ओढ़कर मैली ही की है अर्थात् उक्त लोगों ने शरीर धारण करके जीवन को बिगाड़ा ही है। कबीर कहते हैं कि मैंने इस शरीर रूपी चादर को यत्नपूर्वक ओढ़ा है और इसे ओढ़कर मैली नहीं की व जैसे थी वैसी ही स्थिति में इसे उतारकर रखा है। भाव यह कि मानव शरीर धारण कर, उस पर सांसारिक पाप नहीं चढ़ने दिया है। निर्मल आत्मा को अपवित्र नहीं होने दिया है।

विशेष—1. रूपक अलंकार।

2. शरीर निर्माण प्रक्रिया में योग साधना के उपादानों का चित्रण किया गया है।

(17)

संतो भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडांणी, माया रहै न बांधी रे॥
दुचिते की दोइ थनीं गिरानी, मोह बलीड़ा टूटा।
त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि कुबुधि का भांडा फूटा।
जोग जुगति करि संतौ बाँधी, निरचू चुवै न पाणीं।
कूड़ कपट माया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी॥
आँधी पीछै जो जल झूठा, प्रेम हरी जन भीनां।
कहै कबीर मान के प्रगटें, उदित भया तम षीना।

**शब्दार्थ**—ग्यांन = ज्ञान। टाटी = टट्टी। बलींडा = बल्ली। त्रिस्नां = तृष्णा। छांनि = छप्पर। भांडा = बर्तन। निरचू = बिल्कुल भी। वूठा = बरसा। भींनां = भीग गया। तप खींना = अन्धकार का क्षीण होना।

**व्याख्या**—ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति के बाद अज्ञान के विनाश एवं परमानन्द लीन अनुभूति को व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं कि—हे सन्तों ! ज्ञान की आंधी आ गई है, जिसके वेगवात प्रवाह में मेरी सारी भ्रम की ढढिया (अज्ञान आवरण) उड़ गई है और अब माया उसे बांधने पर भी नहीं बांध पा रही है। लौकिक तथा सांसारिक चेतना, ममत्व एवं लगाव रूपी दोनों खम्भे गिर पड़े हैं और मोह रूपी बल्ली भी टूट गई है। परिणामस्वरूप तृष्णा रूपी छप्पर धराशायी हो गया है और कुबुद्धि रूपी बर्तन फूट गया है। इस बार इस छप्पर को सन्तों ने योग की युक्ति से नये सिरे से बाँधा है। तृष्णा के स्थान पर राम दर्शन या आत्म-दर्शन की उत्कृष्ट अभिलाषा पैदा कर दी है और छप्पर इतना मजबूत हो गया है कि इसमें अब वासना रूपी पानी कतई नहीं टपक सकता है। जब भगवान के स्वरूप का ज्ञान हो गया तो मेरी काया का कपट रूपी सम्पूर्ण कूड़ा-कर्कट निकल गया है। उपर्युक्त ज्ञान की आंधी के पश्चात् भगवद् प्रेम रूपी जल की अपार वर्षा हुई और भगवान का भक्त उस प्रेम रस में सराबोर हो गया। कबीर कहते हैं कि ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही अज्ञान का अन्धकार क्षीण हो गया।

**विशेष**—ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश हो जाता है।

---

# मलिक मुहम्मद जायसी

## प्रेम-खण्ड

(1)

सुनतहि राजा गा मुरछाई। मानौं लहरि सुरुज कै आई॥
प्रेम भाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै तै सोई॥
परा सो पेम समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ विसंभारा॥
बिरह भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई॥
खिनहिं उसास बूढ़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई॥
खिनहिं पीत, खिन होई मुख सेता। खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था। ना जिउ जियै, न दसवैं अवस्था॥
जनु लेनिहार न लेहिं जिउ, हरहिं तरासहिं ताहि।
एसनै बोल आव मुख, करैं 'तराहि तराहि'॥1॥

**शब्दार्थ**—गा = हो गया। मुरछाई = मूर्च्छित। लहरि बुरुज = सूर्य की लहर अर्थात् लू का झोंका। जेहि = जिसे। बिसँभारा = बेसुध। भौंरा = भ्रमर। खिन-खिन = क्षण-क्षण। बौराई = पागल। बेवस्था = स्थिति। दसवँ अवस्था = विरह की दसवीं अवस्था अर्थात् मृत्यु। लेनिदार = प्राण लेने वाले, यमदूत।

**व्याख्या**—हीरामन तोता, राजा रत्नसेन को पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन सुना रहा है। पद्मावती का नखशिख सुन्दर वर्णन सुनते ही राजा मूर्च्छित हो गया, मानो लू का झोंका लग गया हो। सत्य भी है प्रेम के घाव का दुःख कोई नहीं जानता है, जिसे वह घाव लगता है वही जानता है। राजा मूर्च्छित होकर प्रेम के अपार समुद्र में गिर गया था और लहर पर लहर आने से बेसुध होता जा रहा था। पद्मावती का विरह भँवर की तरह उसे घुमा रहा था जिसके कारण क्षण-क्षण में उसका जीव हिलोरें लेता था। विरहावस्था में वह क्षणभर में बिना सांस के हो जाता और उसका जी डूब जाता था, फिर क्षणभर में बौराकर निःश्वास छोड़ने लगता था। राजा का मुख मण्डल क्षण में पीला और क्षणभर में श्वेत हो जाता था। क्षण में उसे चेत हो आता और क्षण में अचेत हो जाता था। प्रेम की स्थिति मरने से भी बदतर होती है क्योंकि उसमें न तो प्राण रहते हैं और न ही मृत्यु होती है।

राजा की स्थिति मरणासन्न हो रही थी, मानो यम के दूत उसके प्राण निकल कर हर रहे थे और उसे डरा रहे थे। ऐसी स्थिति में उसके मुँह से तनिक सा बोल भी नहीं निकलता था, वह केवल त्राहि त्राहि करता था।

**विशेष**—1. विरह दशा का वर्ण। विरह की अन्तिम दशा का चित्रण।
2. उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उदाहरण अलंकार।
3. राजा का पद्मावती के प्रति अनन्य प्रेम का चित्रण।

(2)

**जहे लगि कुटुम्ब लोग औ नेगी। राजा राय आए सब बेगी॥**
**जावत गुनी गारुडी आए। ओझा, बैद, सयान बोलाए॥**
**चरचहिं चेष्टा परिखहिं नारी। नियर नाहिं ओषद तहँ बारी॥**
**राजहिं आहि लखन कै करा। सकति बान मोहा है परा॥**
**नहिं सो राम, हनिवंत बडि दूरी। को लेइ आव सजीवन मूरी॥**
**विनय करहिं जे जे गढ़पती। का जिउ कीन्ह, कौन मति मति॥**
**कहहु सो पीर, काह पुनि खाँगा। समुद सुमेरु आव तुम्ह माँगा॥**
**धावन तहाँ पठावहु, देहिं लाख दस रोक।**
**होइ सो बेलि जेहि बारी, मानहिं सबै बरोक॥2॥**

शब्दार्थ—नेगी = नेग पाने वाले, दास वगैरह। बेगी = शीघ्र। गारुडी = विषवैद्य। सयान = सयाने। नारौ = नाडी। नियर = निकट बाटीं = वाटिका। कै करा = के समान। सकति बान = शक्तिबाण। परा = पड़ा है। हनिवँत =

हनुमान । भूटी = बूँटी । खांगा = कमी होना । रोक = रोकड़ । बरोक = बरच्छा, फलदान ।

**व्याख्या**—राजा को मूर्च्छित देखकर जहाँ तक कुटुम्ब के लोग, नौकरचाकर राजा और राव थे, सब शीघ्र आ गये । राजा के इलाज के लिए जितने गुणी और विषवैद्य थे, वे भी आ गये । सब ओझा, वैद्य और सयानों को भी बुलाया गया । वे आपस में राजा की मूर्छा तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे और उसकी नाड़ी परीक्षा भी । सबने यही कहा, निकट की राजवाटिका में उसके रोग की औषध नहीं है अर्थात राजा शरीरिक रोग से पीड़ित नहीं है । राजा की तो लक्ष्मण जैसी अवस्था हो गई है, यह शक्तिबाण से मूर्च्छित हुआ पड़ा है । यहाँ लक्ष्मण के उपचार की व्यवस्था करने वाले राम नहीं हैं और वीर हनुमान भी बड़ी दूर हैं । यहाँ संजीवनी कौन लेकर आयेगा । वहाँ जितने भी गढ़पति थे सब विनती करने लगे कि राजा का किसी वस्तु के लिए जी हुआ है । मन में क्या विचार आया है, समझ नहीं पड़ रहा है । सब कहते हैं, हे राजा ! अपनी पीड़ा को खोलकर कहो । किस वस्तु के बिना तुम्हें अभाव का अनुभव हुआ है । अगर तुम कहो तो समुद्र और सुमेरु भी तुम्हारे मांगने से आ सकते हैं ।

सब हितैषी चिन्तामग्न हैं । विचार कर रहे हैं कि उस स्थान पर जहाँ राजा की वह इच्छित वस्तु हो, अपने दूत तुरन्त भेजो । हम दस लाख रुपये की रोकड़ देंगे, अगर जरूरत पड़ेगी तो । जिस बगीचे में वह वेल (राजा के प्राणों की रक्षार्थ) होगी उसे वहाँ से बरच्छा के रूप में ही ले आवेंगे ।

( 3 )

**जब भा चेत उठा बैरागा । बाउर जानौं सोइ उठि जागा ।।**
**आवत जग बालक जस रोआ । उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ' ।।**
**हौं तो अहा अमरपुर जहाँ । इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ ।।**
**केइ उपकार मरन कर कीन्हा । सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा ।।**
**सोवत रहा जहाँ सुख साखा । कसन तहाँ सोवत विधि राखा ।।**
**अब जिउ उहाँ, इहाँ तन सूना । कब लगि रहै परान बिहूना ।।**
**जो जिउ घटहिं काल के हाथा । घट न नीक पै जीउ निसाथा ।।**
**अहुठ हाथ तन सरवर, हिया कँवल तेहि माँह ।**
**नैनहिं जानहु नीयरे, कर पहुँचत औगाह ।।3।।**

**शब्दार्थ**—भा = हुआ । बाउर = बावला । जस = जैसे । अहा = था । केइ = किसने । हँकारि = जगाकर । विधि = विधाता । उहाँ = वहाँ । इहाँ = यहाँ । बिहूना = बिना । निसाथा = अकेला । अहुठ = साढ़े तीन हाथ । हिया = हृदय । नीयरे = निकट । औगाह = अगाध ।

**व्याख्या**—कुछ समय उपरान्त जैसे ही राजा को होश हुआ, फिर उसे वही वैराग्य उठ खड़ा हुआ मानो कोई बावला सोकर जागा हो । जिस प्रकार संसार में

आते समय बच्चा रोता है, राजा वैसे ही रो उठा, कि हा मेरा वह ज्ञान खो गया। राजा कहने लगा कि मैं तो वहाँ था जहाँ अमृत नगरी है, मैं यहाँ मृत्यु की नगरी में कहाँ आ गया। किसने प्रेम में मेरा मरण करके मेरे साथ यह उपकार किया है, एक ओर तो मेरी सोई शक्ति जगा दी, दूसरी ओर मेरा जीव हर लिया है। मैं तो आनन्द से वहाँ सोता था, जहाँ सुख की छाया थी, विधाता ने पता नहीं क्यों मुझे वहाँ नहीं सोने दिया। अब तो मेरे प्राण वहाँ है और शरीर यहाँ सूना पड़ा है। परन्तु प्राणों से हीन होकर यह कब तक रह सकता है। जब जीव काल के हाथों स्वाभाविक रीति से घटता है तो उसका घटना ठीक माना जा सकता है परन्तु उस अवस्था में जीव बिना साथी के अकेला होता है।

पद्मावती का ध्यान कर राजा कहता है कि साढ़े तीन हाथ का यह शरीर सरोवर है। इसके मध्य में हृदय रूपी कमल है। वह कमल नेत्रों के पास जान पड़ता है परन्तु वहाँ तक हाथ पहुँचाना चाहता हूं तो अगाध जल मिलता है। भाव यह कि पद्मावती हृदय में निवास करती है परन्तु मिलन असम्भव है।

**विशेष**—1. रूपक, उत्प्रेक्षा, अलंकार।

2. राजा का पद्मावती के प्रति अगाध प्रेम का वर्णन। विरह दशा का उत्कृष्ट चित्रण।

( 4 )

**सबन्ह कहा मन समुझहु राजा। काल सेंति कै जुझ न छाजा।।**
**तासौं जूझ जात जो जीता। जानत कृष्ण तजा गोपीता।।**
**औ न नेह काहू सौं कीजै। नांव मिटै, काहे जिउ दीजे।।**
**पहिले सुख नेहहिं जब जोरा। पुनि होई कठिन निबाहत ओरा।।**
**अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू। पहुँचि न जाइ परा तस फेरू।।**
**ज्ञान दिस्ट सौं जाइ पहुँचा। पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा।।**
**धुब तें ऊँच पेम धुव ऊआ। सिर देइ पाँब देइ सो छुआ।।**
**तुम राजा औ सुखिया, करहु राज सुख भोग।**
**एहि रे पंथ सो पहुँचै, सहै जौ दुःख वियोग।।4।।**

**शब्दार्थ**—सबन्ह = सबने। छाजा = शोभित। तजा = छोड़कर। नेह = प्रेम। जोरा = जोड़ना। अहुठ = साढ़े तीन हाथ। सुमेरु = पर्वत। ध्रुव = ध्रुव तारा।

**व्याख्या**—सब राजा को समझा रहे हैं—हे राजा! मन को समझाकर देखो, काल से जूझना शोभा नहीं देता है। उससे युद्ध ठानना अच्छा नहीं, युद्ध तो उससे करना अच्छा है, जिसे विजयी किया जा सके। यदि ऐसा न होता तो कृष्णजी गोपियों को छोड़कर मथुरा न जाते अर्थात् कृष्ण में गोपियों से जूझने की शक्ति न थी। हे राजा! बिना बिचारे किसी से प्रेम भी नहीं करना चाहिए, प्रेम का नाम तो मधुर

होता है परन्तु उसे अपना लिया जाय तो प्राण देना पड़ता है। प्रारम्भ में जब प्रेम जुड़ता है तो बड़ा सुख मिलता है, परन्तु उसे अन्त तक निबाहना बड़ा कठिन हो जाता है। साढ़े तीन हाथ का यह शरीर सुमेरु जैसा है। इसमें इतने फेर, घुमाव है कि वहाँ तक पहुँचा नहीं जा सकता। आकाश में दृष्टि रखने पर सुमेरु पर पहुँचा जा सकता है परन्तु प्रेम दृष्टि की सीमा में नहीं आता। वह आकाश से भी ऊँचा होता है। आकाश में जो ध्रुव तारा उदय होता है, प्रेम का ध्रुव उससे भी ऊँचाई पर उदय होता है। हे राजा! जो पहले अपना सिर देकर पीछे इस प्रेम मार्ग में पैर देता है वही प्रेम के ध्रुव को छू सकता है अर्थात् प्रेम बिना बलिदान के नहीं प्राप्त होता।

तुम राजा हो और सुखी हो, किसी भी प्रकार की कमी तुम्हारे पास नहीं है। तुम अपने राज और सुख का भोग करो। प्रेम के मार्ग में तो वही पहुँचता है, जो वियोग का दुःख सह सकता हो अर्थात् प्रेम तुम्हारे वश का नहीं है।

**विशेष**—1 रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार।

2. प्रेम मार्ग बड़ा कठिन मार्ग होता है। हर किसी के वश की बात नहीं है। प्रेम परीक्षा में कृष्ण भी खरे नहीं उतरे उन्होंने भी अन्त में गोपियों को छोड़ दिया।

( 5 )

**सुऐ कहा मन बूझहु राजा। करब पिरीत कठिन है काजा॥**
**तुम राजा जेई घर पोई। कंवल न भेंटेउ भेंटेउ कोई॥**
**जानहि भौंर जौ तेहि पथ लूटे। जीउ दीन्ह औ दिएहु न छूटे॥**
**कठिन आहि सिंघल कर राजू। पाइय नाहिं जूझकर साजू॥**
**ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी, जती, तपा, संन्यासी॥**
**भोग किए जौं पावत भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू॥**
**तुम राजा चाहहु सुख पावा। भोगहि जोग करत नहिं भावा॥**
**साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प।**
**सो पै जानै बापुरा, करै जो सीस कलप्प॥5॥**

**शब्दार्थ**—बूझहु = विचारना। घर पोई = घर की पोई रोटियाँ। कोई = कुमुदिनी। साजू = ठाठ-बाट। तपा = तपस्वी। जोगु = योग साधना। साधन्ह = इच्छा। बापुरा = बेचारा। कलप्प = काटना।

**व्याख्या**—हीरामन तोते ने कहा, हे राजा! मन विचार कर देखो। प्रीति करना बहुत कठिन काम है। अब तक तुमने घर की पोई हुई रोटियाँ खाई हैं अर्थात् आराम-चैन से रहे हो। तुम प्रेम पंथ में उस भौंरे के समान हो जो कुमुदिनी पर बैठा है, कमल पर नहीं। अर्थात्। प्रेम का दर्द तुम नहीं जानते हो। वही भँवरा इस मर्म को जानता है जो इस मार्ग में पूर्णतः लुट गया है, वह प्रेम मार्ग में अपने प्राण देता है और प्राण देने पर भी मार्ग से नहीं हटता। तुम्हारा सिंहल राजा की

पुत्री पद्मावती से प्रेम है, परन्तु सिंहल का राज्य अत्यन्त कठिन है, उसे युद्ध के ठाठ-बाट से प्राप्त नहीं किया जा सकता। उस प्रेम-पथ पर तो वही जाता है जो उदासी, जोगी, यति, तपस्वी या सन्यासी हो। तुम इनमें से कोई नहीं हो, अतः यह मार्ग त्याग दो। यदि भोग विलास से ही उस सिंहल का भोग मिल सकता तो फिर भोग छोड़कर कोई भी योग-साधना का मार्ग न अपनाता। तुम राजा हो, सुख भोगना चाहते हो। योग और भोग में मेल असम्भव है।

हे राजा केवल इच्छाओं से ही सिद्धि प्राप्त नहीं होती है, उसके लिए तप साधना पड़ता है। इस रहस्य को बेचारे वही जानते हैं जो अपना सिर काटकर रख देते हैं।

**विशेष**—प्रेम पंथ की महिमा का चित्रण। प्रेम-पंथ हर किसी के बश की बात नहीं है। इसमें सफलता प्राप्ति के लिए बलिदान की आवश्यकता है।

( 6 )

**का भा जोग कसनि के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥**
**जो कहि आप हेराइ न कोई। तौ कहि हेरत पाव न सोइ॥**
**पेम पहार कठिन बिधि बढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा॥**
**पंथ सूरि कै उठा अंकूरू। चोर चढ़ै, की चढ़ मंसूरू॥**
**तू राजा का पहिरसि कथा। तोरे घरहिं माँझ दस पंथा॥**
**काम, क्रोध, तिस्ना मद, माया। पांचों चोर न छाँड़हिं काया॥**
**नवौं सेंध तिन्ह कै दिठियारा घर मूसहिं, निसी, को उजियारा॥**
**अबहू जागु अजाना होत आव निसि भोर॥**
**तब किछु हाथ न लागिहिं, मूसि जाहिं जब चोर॥6॥**

**शब्दार्थ**—कथे = कहना। हेराइ = खो जाना। हेरत = ढूँढता है। सूरि = सूली। मंसूर = प्रसिद्ध सूफी। कंथा = कथरी। दस पंथा = दस मार्ग, दस इन्द्रियाँ। सेंख = सेंध, छेद। मूसहिं = लूटते हैं। अयाने = बेसमझ।

**व्याख्या**—हे राजा! योग की कहानी कहने से क्या लाभ। दही मथे बिना घी नहीं निकलता अर्थात बिना साधना के सिद्धि नहीं मिलती। जब तक कोई स्वयं नहीं खो जाता, तब तक जिसे ढूँढता है उसे नहीं पाता। विधाता ने प्रेम का पर्वत कठिन बनाया है। उस पर वही चढ़ सकता है, जो सिर के बल चढ़ता है वह मार्ग दुर्गम है, उस मार्ग में सूलियों के अंकुर निकले हुए हैं। उन सूलियों पर या तो चोर चढ़ते हैं, या मंसूर चढ़ा था। तू राजा है फटे पुराने (कथरी) कपड़े क्यों पहनता है, तेरे स्वयं के शरीर में ही दस मार्ग हैं। काम, क्रोध, तृष्णा मद और माया से पाँचों चोर तेरे शरीर को नहीं छोड़ते हैं। इस घर में नौ सेंधे (रास्ते) है, जिनमें घुसकर चोर रात और दिन इस घर को लूटते हैं।

हे! नासमझ राजा, अब भी वक्त है, जाग जा। अब तो बिल्कुल सवेरा होने को है। जब चोर लूट ले जायेंगे तब तेरे कुछ भी हाथ न लगेगा।

**विशेष**—1. योग-साधना प्रक्रिया का वर्णन ।

2. मंसूर-प्रसिद्ध सूफी, जो अनलहक का जाप करते हुए बगदाद के खलीफा मुक्तदिर की आज्ञा से सूली पर चढ़ा दिया गया था ।

( 7 )

**सुनि सो बात राज मन जागा । पलक न मार, पेम चित लागा ।।**
**नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूंगा । जस गुर खाइ रहा होइ गूंगा ।।**
**हिय कै जोति दीप वह सूझा । यह जो दीप अँधियारा बूझा ।।**
**उलटि दीठि माया सौं रूठी । पलटि न फिरी न जानि कै झूठी ।।**
**जौ पै नाहीं अहथिर दसा । जग उजार का कीजिय बसा ।।**
**गुरू विरह चिनगी जो मेला । जो सुलगाइ लेइ सो चेला ।।**
**अब करि फनिग भृंग कै करा । भौंर होहुँ जेहि कारन जरा ।।**
**फून फूल फिरि पूछौं, जा पहुँचौं ओहि केत ।**
**तन नेवछावरि कै मिलौं, ज्यों मधुकर जिउ देत ।।7।।**

**शब्दार्थ**—मूँगा = मूँगे, बहुमूल्य पदार्थ । द्वीप = सिंहल द्वीप । अहथिर = स्थिर । उजार = उजड़े । मेला = मिलन करवाना । चेला = शिष्य । केत = केतकी ।

**व्याख्या**—यह बात सुनकर राजा के जी में चेत हुआ । उसका चित्त प्रेम में लगा हुआ था, वह पल भर के लिए पलक न मारता था । उसकी आँखों से मोती और मूंगे (आँसू और रक्त बिन्दु) झड़ रहे थे । प्रेम में दिवाना हो, आनन्द में ऐसा मग्न था मानो जो कोई गुड़ खा लेने पर गूंगा हो अर्थात् स्वाद ले चुका हो परन्तु कह न पाता हो । उसे हृदय के प्रकाश में सिंहल द्वीप दिखाई देने लगा और यहाँ का जो द्वीप था वह अंधेरा लगने लगा अर्थात् प्रकाश ज्योति में सिंहल ही लक्ष्य हो गया । दृष्टि की गति विपरीत हो गई वह सांसारिक माया से रूठ गई और माया को मिथ्या जानकर उस ओर वापस नहीं फिरी । माया से बन्धन टूट गया । वह सोचने लगा यदि संसार कोई भी दशा सदा स्थिर नहीं रहती तो इस अस्थिर उजड़े जगत में रहकर भी क्या किया जाय । गुरु वह जो विरह रूपी चिनगारी से मिलन कराता है । परन्तु जो उस चिनगारी को सुलगा लेता है अर्थात् गतिमान बना लेता है वही सच्चा शिष्य है । अब मैं पतिंगे और भृंगी की कलाबाजी अपना कर उसके लिए (पद्मावती) भौंरा बनूँगा जिसके कारण जल रहा हूँ । अर्थात् पद्मावती को प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करूँगा ।

मैं अब एक-एक फूल के पास जाकर पद्मावती का पता पूछूँगा । यदि मैं उस केतकी के पास पहुँच जाऊँगा तो अपना शरीर न्यौछावर करके भी उससे मिलूँगा जैसे भौंरा उससे बिद्ध कर प्राण दे देता है ।

**विशेष**—1. उदात्मक, रूपक, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

2. आत्मा का ब्रह्म से कच्चा प्रेम होता है परन्तु बिना गुरु के उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है ।

( 8 )

बंधु मीत बहुतै समझाया । मान न राजा कोउ भुलावा ॥
उपजी पेम पीर जेहि आई । परबोधत होइ अधिक सो आई ॥
अमृत बात कहत विष जाना । पेम क बचन मीठ कै माना ॥
जो ओहि विषै मारि के खाई । पूँछहु तेहि सन पेम मिठाई ॥
पूँछहु बात भरथरिहि जाई । अमृत राज तजा विष खाई ॥
औ महेश बड़ सिद्ध कहावा । उनहूँ विषय कंठ पै लावा ॥
होत आव रवि किरिन विकासा । हनुवंत होई को देह सुआसा ॥
तुम सब सिद्धि मनावहु, होइ, बनेस सिधि लेव ।
चेला को न चलावैं, तुलैं गुरू जेहि भेव ॥8॥

**शब्दार्थ**—पीर = पीड़ा । परबोधक = ज्ञान । मीठ = मिठाई । सन = से । सुआसा = सुखद प्रकाश ।

**व्याख्या**—रत्नसेन को बान्धुओं, मित्रों ने पद्मावती से प्रेम न करने हेतु खूब समझाया परन्तु राजा किसी के भुलावे में नहीं आया । प्रेम-पीड़ा हृदय में उपजी वह प्रेम के ज्ञान को पाकर और तेज हो गई । जो कोई भी अमृत-तुल्य बात समझाने हेतु कहता है उसे राजा विष समझता है और प्रेम की बात को ही मिष्ठान मानता है । भाव यह कि सिवाय प्रेम के महत्व के वह कुछ भी सुनना पसन्द नहीं करता । जो इस कठोर विष को खाता है उससे प्रेम मिष्ठान के बारे में पूछो । प्रेम के परिणाम भयंकर होते हैं । यह बात भरतरी से जाकर पूछो उसने अमृत रूपी राज्य को छोड़कर प्रेम रूपी विष का पान किया । महादेव जो बड़े सिद्ध पुरुष कहलाते हैं उन्होंने विष को अपने कंठ में धारण किया । जब लक्ष्मण को शक्ति वाण लगा तब यह कहा गया कि संजिवनी बूँटो को प्रातःकाल होने से पहले लाकर लक्ष्मण को दो तब तो यह बच सकते हैं । ऐसे संकट के समय में हनुमान ने ही आशा बंधाई थीं ।

तुम सब नाना सिद्धियों को मनाओ । निश्चित ही गणेश अनुकूल होंगे । जिस भेद को गुरू जानता है वहाँ तक शिष्य नहीं पहुँच पाता है ।

**विशेष**—1. रूपक, अनुप्रास अलंकार ।

2. प्रेम के महत्व का चित्रण ।

# पद्मावती-गोरा-बादल

## संवाद-खण्ड

**सखिन्ह बुझाई दगध अपारा। गइ गोरा बादल के बारा।।**
**चरन कँवल भुइँ जनम न धरे। जात तहां लगि, छाला परे।।**
**निसरि आए छत्रि सुनि दोऊ। तस कांपे जस कांप न कोऊ।।**
**केस खोरि चरनन्ह रज झारा। कहां पावें पदमावती धारा ?।।**
**राखा आनि पाठ सोनवानी। विरह वियोगिनी बैठी रानी।।**
**दोउ ठाढ़ होई चँवर डोलावहिं। माथे छात, रजायसु पावहिं।।**
**उलटि बहा गंगा कर पानी। सेवक बार आइ जो रानी।।**
**का अस कस्ट कीन्ह तुम, जो तुम्ह करत न छाज।**
**आज्ञा होई बेगि सो, जीउ तुम्हारे काज।।1।।**

**शब्दार्थ**—बुझाई = शान्त किया। दगध = जलन। बारा = घर। भुई = धरती। तस = ऐसे। रज = धूल। पावें = पाँव। सोनवानी = स्वर्ण वर्णी। छात = छाँह। रजायसु = आदेश। बार = द्वार। छाज = शोभा।

**व्याख्या**—रत्नसेन को अलाउद्दीन ने बन्दी बना लिया है, रानी को समाचार मिलने पर नाना प्रयत्न किये परन्तु रत्नसेन से मिलन न हो सका। रत्नसेन के अभाव में पद्मावती विरह अग्नि से जल गई। सखियों ने समझा बुझाकर उसकी गहरी विरह की ज्वाला को शान्त किया। तब वह गोरा बादल के घर गई। पद्मावती ने जीवन में कभी भी अपने चरण कमल धरती पर नहीं रखे थे अतः गोरा बादल के घर चलकर आने में ही छाले पड़ गये। पद्मावती का आगमन सुनकर दोनों क्षत्रिय वीर बाहर निकल आए, रानी को पैदल चलकर अपने घर आया देखकर इस प्रकार काँपने लगे जैसे जीवन में पहले कभी नहीं कांपे थे। दोनों वीर अपने सिर के केश खोलकर रानी के चरणों की धूल झाड़ने लगे और बोले कि रानी पद्मावती को कहां पैर रखने पड़े। तुरन्त स्वर्ण का पाट लाकर रखा परन्तु प्रिय वियोग में पद्मावती ने उस पर बैठना स्वीकार नहीं किया। फिर वे दोनों वीर चँवरधारी बनकर चँवर डुलाने लगे। उन्होंने कहा, अगर पद्मावती रानी कुछ आदेश दे तो वह हमारे मस्तक पर छांह होगी अर्थात् अनुकम्पा होगी। आज रानी को हमारे घर देख कर आश्चर्य है। आज गंगा की धारा उलटी बहने लगी, सेवक के द्वार पर रानी नहीं आया करती है।

हे रानी तुमने क्यों अपने मन में इतना कष्ट उत्पन्न किया है। इस प्रकार का कष्ट तुम्हें शोभा नहीं देता है। शीघ्र आज्ञा करें कि हमें क्या करना है। हमारे प्राण तुम्हारे कार्य के लिए प्रस्तुत है।

**विशेष**—1. रूपक, अनुप्रास अलंकार।

2. पद्मावती का गोरा-बादल के घर जाना, उन वीरों द्वारा रानी का उचित आदर करना व स्वामी रक्षार्थ प्राण तक देने को तत्पर होने का अति मार्मिक चित्रण ।

**कही रोइ पद्मावती बाता । नैनन्ह रकत दीख जग राता ॥**
**उथल समुद जब मानिक भरे । रोइत रुहिर आंसू तस ढरे ॥**
**रतन के रंग-नेंन पै वारौं । रती रती कै लोहू ढारौं ॥**
**भंवरा ऊपर कंवल भवावौ । लेइ चलु तहां सूर जहं पावौं ॥**
**हिय के हरदि बदन कै लोहू । जिउ बलि देउं सो संवरि बिछोहू ॥**
**परहिं आंसू जस सावन नीरू । हरियरि भूमि, कुसुंभी चीरू ॥**
**चढ़ीं भुअंगिनि लट लट केसा । भइ रोवति जोगिन के भेसा ॥**

**बीर बहूटी भइ चली, तबहुं रहहिं नहिं आंसु ।**
**नैनहिं पंथ न, सूझै, लागेउ भादौं मासु ॥2॥**

**शब्दार्थ**—रुहिर = रुधिर, खून । वारौं = न्यौछावर । सूर = सूर्य, रत्नसेन । उलथि = उलीचना । हिय कै हरद = हृदय को केसरिया बनाऊँगी । बदन = मुख । लोहू = लाला । नीर = जल । भुअंगिनी = सर्पिणी ।

**व्याख्या**—रानी पद्मावती ने रो-रो कर सब समाचार गोरा-बादल को सुनाया । उसके नेत्रों में रक्त के आँसू आ रहे थे, उन्हें देखकर संसार भी लाला वर्ण का हो गया । रोने से पद्मावती के रक्त के आँसू इस प्रकार गिर रहे थे माना समुद्र अपने भीतर भरे माणिक्यों को बाहर उलीचकर फैंक रहा हो । पद्मावती कह रही थी मैं रत्न के उस लाल वर्ण पर अपने इन नेत्रों को न्यौछावर कर दूँगी । और अपने तन के सारे रक्त को रत्ती-रत्ती कर बिखेर दूँगी । मैं नेत्र रूपी कमलों पर से पुतली रूपी भौरों को उड़ाकर वहाँ भेजूँगी जहां सूर्य रत्नसेन निवास करता है । प्रियतम के वियोग में मैं हृदय का केसरिया बाना करके, मुँह को अरुण बनाकर अपने प्राण न्यौछावर कर दूँगी । आँखों से लगातार आँसू से गिर रहे थे जैसे साव में पानी बरसता है। उस वर्षा से भूमि हरित् होती है । इन आँसूओं की वर्षा से तन का चीर कुसुंमी बन रहा था । केश राशि की लम्बी-लम्बी लटें सिर पर सांपों की तरह लौट रही थी । विरह-रुदन से इसका वेश जोगण सा हो गया था ।

पद्मावती के नेत्रों से लगातार रक्त के आँसू गिरने से पृथ्वी पर बीर बहूटियां रेंगने लगी । तब भी उसके आँसू रुकते न थे । नेत्रों से मार्ग न दिखाई दे रहा था । भाद्रपद की वृष्टि की तरह आँसूओं की झड़ी लग रही थी ।

**विशेष**—1. अनुप्रास, अतिशयोक्ति, उदात्मक अलंकार ।

2. रक्त के आँसू बहाना यह फारसी प्रभाव है ।

3. पद्मावती विरह या हृदय द्रावक चित्रण किया गया है ।

**तुम गोरा बादल खंभ दोऊ । जस रन पारथ और न कोऊ ॥**
**दुख बरखा अब रहै न राखा । मूल पतार, सरग भइ साखा ॥**

छाया रही सकज महि पूरी । विरह बेलि भइ बाढ़ि खजूर ॥
तेहि दुख लेत बिरिछ वन बाढ़े । सीस उघारे रोवहिं ठाढ़े ॥
पुहुमि पूरी सायर दुख पाटा । कोड़ी केर बेहरि हिय फाटा ॥
बेहरा हिय खजूर कै बिया । बेहर नाहिं मोर पाहन हिया ॥
पिय जेहि बंदि जोगिनि होइ धावौं । हौं बंदि लेउँ, पियहि मुकरावौ ॥
सूरुज गहन गरासा, कँवल न बैठें पाट ।
महूँ पंथ तेहि गवनब, कंत गए जेहि बाट ॥3॥

**शब्दार्थ**–रन पारथ = युद्ध में अर्जुन के समान । बरखा = वृक्ष । मूल = जड़ । महि = पृथ्वी । पुहुमि = पृथ्वी । सायर = सागर । कोड़ी = कौडी । बेहरि = विदीर्ण होना । बिया = बीज । मोर = मेरा । मुकरावौ = छुड़ाना । महूं = मैं ।

**व्याख्या**—पद्मावती गोरा बादल से कह रही है हे गोरा बादल । तुम दोनों वीर इस राज्य के स्तम्भ हो । युद्ध में तुम अर्जुन के समान हो, तुम्हारे समान और कोई नहीं है । मेरे दुःख का वृक्ष अब इतना बढ़ गया है कि रोके नहीं रुकता है । उसकी जड़ें पाताल में और शाखा आकाश तक पहुँच गई है अर्थात् दुःख की सीमा ही नहीं है । दुःख के इस प्रकार के वृक्ष से जंगल के और भी वृक्ष निकल कर बढ़ गये हैं जो सिर नग्न किए खड़े रो रहे हैं । दुःख से धरती भी भर गई और समुद्र भी पाट दिया गया है । समुद्र में निवास करने वाली कौडी उस दुःख से विदीर्ण हो गई है अतः उसका हृदय फट गया है । खजूर के बीज का हृदय भी फट गया है परन्तु मेरा पत्थर सा हृदय नहीं फटा है । जहां मेरे प्रियतम बंदीगृह में हैं मैं वहीं जोगिन होकर जाऊँगी । मैं स्वयं बंदीगृह में पड़कर मेरे प्रियतम को बन्धन से छुड़ाऊँगी ।

सूर्य को राहु ने ग्रस लिया है जैसे विपदा के समय कमल पाट पर नहीं बैठ सकती अर्थात् रतनसेन प्रियतम के संकट में फँसने पर मैं आनन्द से नहीं रह सकती । मैं भी उसी मार्ग का अनुसरण करूँगी जिस मार्ग पर प्रियतम गये हैं ।

**विशेष**—1. पद्मावती के विरह का मार्मिक चित्रण । विरह-व्यथा का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है ।

2. रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास अलंकार ।

गोरा बादल दोउ पसीजे । रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे ॥
हम राजा सौं इहै को हाने । तुम न मिलौ, धरि है तुरकाने ॥
जो मति सुनि हम गए कोहाँई । सो निआन हम्ह माथ आई ॥
जो लगि जिउ, नहिं भागहिं दोऊ । स्वामी जियत कित जोगिनि होऊ ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा । नीर घटे घर आइहि राजा ॥
बरषा गए, अगस्त जो दीठिहि । परिहि पलानि तुरंगन पीठिहि ।
वेधौं राहु, छोड़ावहुं सूरू । रहै न दुख कर मूल अकूरू ॥

सोइ सूर, तुम ससहर, ग्रानि मिलावौं सोइ ।
तस दुख महँ सुख उपजै, रैनि माहँ दिन होइ ।।4।।

**शब्दार्थ**—पसीजे = पिघल गये, द्रवित हो गए। रुहिर = खून । धरिहै = पकड़ लो । कोहांई = कुपित । कित = कैसे । अगस्त-हस्ति = नक्षत्र विशेष । तुरंगम = घोड़ा ।

**व्याख्या**—गोरा-बादल जो राजा से नाराज थे, रानी की व्यथा सुनकर पसीज गए। वे भी दुःख से द्रवित हो रोने लगे और रुधिर के आंसूओं से सिर से पैर तक भीग गए। कहने लगे हम राजा से इसलिए नाराज हो गए थे कि तुम अलाउद्दीन से मेल न करो, यह दुष्ट है, इस तुर्क को पकड़ लो, बन्दी बना लो। राजा ने हमारी बात न मानी। राजा के जिस विचार को हम सुनकर कुपित हो चले आये थे अन्त में उसका फल हमारे ही सिर आकर पड़ा है। हे रानी ! जब तक यह जीवन है तब तक हम दोनों युद्ध से नहीं भागेंगे। तुम निश्चित रहो। तुमने यह जो जोगिन का वेश बना रखा है यह अनुकूल नहीं है। हे रानी ! स्वामी के जीते जी तुम जोगिन कैसे बनोगी। जब अगस्त नक्षत्र का उदय होगा, हस्ति नक्षत्र में घन गरजना करेंगे और पृथ्वी पर जल का बरसना घट जायेगा तब राजा घर लौट आएँगे। अगस्त नक्षत्र की दृष्टि के सामने वर्षा कहां टिक सकती है। उस समय घोड़ों की पीठ पर पलान कसी जावेगी अर्थात् वीर युद्ध की तैयारी में लग जायेंगे। तब मैं राहु रूपी अला-उद्दीन को बेघर सूर्य रूपी रत्नसेन को छुड़ाऊँगा उससे हे रानी ! तुम्हारे दुःख का मूल अंकुर नष्ट हो जायेगा।

राजा रत्नसेन सूर्य है। तुम शरद् की पूर्ण चन्द्रमा हो। उसे लाकर तुमसे मिलाएँगे। इस प्रकार दुःख में से सुख का उदय होगा और रात्रि के अंधकार को हटाकर दिन निकलेगा।

**विशेष**—गोरा-बादल के वीरोचित व्यक्तित्व का चित्रण ।

लीन्ह पान बादल औ गोरा। केहि देउँ उपम तुम्ह जोरा ?
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ। तुम्ह हनुवंत अंगद सम दोऊ ।।
तुम अरजुन औ भीम भुवारा। तुम बल रन दल मंडन हारा।
तुम टारन भारन्ह जग जाने। तुम सुपुरुष जस करन बखाने ।।
तुम बलबीर जैस जगदेऊ। तुम संकर औ मालकदेऊ ।।
तुम अस मोरे बादल गोरा। काकर मुख हेरों, बंदिछोरा ?।।
जास हनुवंत राघव बंदि छोरी। तस तुम छोरि मेरावहु जोरी ।।

जैसे जरत लखाघर, साहस कीन्हा भीउँ ।
जरत खंभ तस काढहु के पुरुषारथ जीउ ।।5।।

**शब्दार्थ**—लीन्ह पान = किसी कठिन कार्य को सौंपते हुए पान का बीड़ा दिया जाता था। जोड़ा-जोड़ा, गोरा-बादल। सरवरि = तुलना । भुवारा = भूपाल ।

टारने = हटाने वाले । काकर = किसका । बंदिछौरा = बंधन से छुड़ाना । छोरी = छुड़ाया । मेरावहु = मिलाओगे । जोरी = राजा रानी की जोड़ी ।

**व्याख्या**—गोरा-बादल की विरोचित बातों को सुनकर रानी ने कहा ! हे गोरा-बादल यह बीड़ा स्वीकार करो । तुम वीर हो, तुम्हारी जोड़ी की उपमा मैं किससे दूँ । तुम बहादुर सामन्त हो. तुम्हारी तुलना संसार में कोई नहीं कर सकता। तुम दोनों अंगद और हनुमान के समान हो । अर्जुन और भीम राजाओं के समान हो । युद्ध में अपने बल से दुश्मन-दल का नाश करने वाले हो । तुम घटनी का भार हटाने में विख्यात हो, अर्थात् अद्वितीय योद्धा हो । तुम सत्पुरुष हो राजा कर्ण के समान दानी हो । तुम बल के भण्डार वीर जाज और जगदेव हो । तुम शंकर और मार्कण्डेय हो । हे बादल-गोरा ! जब तुम जैसे वीर मेरे है अर्थात् तुम्हारा पूर्ण भरोसा मुझको है तब मैं राजा के बन्धन छुड़ाने के लिये किसका मुँह देखूँगी । जैसे वीर हनुमान ने राम का बन्धन छुड़ाया था और सीता को मिलाया था वैसे ही तुम राजा को छुड़ाकर हम दोनों को मिलाओगे ।

जैसे कौरव द्वारा निर्मित जलते हुए लाक्षागृह में भीम ने साहस करके सबको बाहर निकाला था, वैसे ही तुम भी जलते हुए उस राज्य के स्तम्भ राजा रत्नसेन को जान पर खेलकर निकाल लाओ ।

**विशेष**—1. गोरा-बादल की वीरता का चित्रण ।

2. उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास अलंकार ।

3. जज-जगदेव = जाज रणथम्भोर के हम्मीर का अत्यन्त विश्वास पात्र और प्रधान वीर था । अलाउद्दीन के समय युद्ध करते हुए हम्मीर अन्त में जाज को ही अपना दुर्ग सौंपकर स्वयं दिवगत हुए थे । जाज ने दो दिन तक बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा कर वीर गति पाई । जगदेव धार के परमार राजा उदयादित्य की बड़ी रानी का पुत्र था अपनी विमाता के आदेश से उसके पुत्र रणधवल के लिये राज्य प्राप्ति का मार्ग निष्कंटक करने के लिये जगदेव अपनी स्त्री के साथ छोड़कर महाराज सिद्धराज जयसिंह के यहाँ पहुंचा उन्होंने उसे अपने सामंत के रूप में स्थान दिया । जगदेव ने सिद्धराज की रक्षा के लिये अपना मस्तक दिया था ।

राम लखन तुम दैत सँधारा । तुम्हहिं घर बलभद्र भुवारा ।।
तुम्हहिं द्रोण और गँगेऊ । तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ ।।
तुम्हहिं युधिष्ठिर और दुरजोधन । तुम्हहिं नील नल दोउ संबोधन ।।
परशुराम राघव तुम जोधा । तुम परतिज्ञा तें हिय बोधा ।।
तुम्हहिं शत्रुहन भरतकुमारा । तुम्हहिं कृस्न चानूर सँघारा ।।
तुम परदुम्न औ अनिरुध तोऊ । तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ ।।
तुम्ह सरि पूज न बिक्रम साके । तुम हमीर हरिचंद सत आंके ।।
जस अति संकट पंडवन्ह, भएउ भीवं बंदिछोर ।
तस परबस पिउ काढ़हु, राखि लेहु भ्रम मोर ।।6।।

**शब्दार्थ**—दैत = दैत्य, राक्षस । लेखौं = दिखाई देना । राघव = राम । बोधा = सम्मान देने वाले । चानूर = चाणूर । सरि = समान । साके = प्रसिद्ध । सत आंके = सत्य की रेखा बनाई । पंडवन्द = पाण्डवों में । तस = वैसे ही । परबस = अधीन । भ्रम = प्रतिष्ठा । मोर = मेरी ।

**व्याख्या**—पद्मावती गोरा-बादल की वीरता की प्रशंसा करती हुई कहती कि तुम राम-लखन और कृष्ण-बलराम के समान हो, जिन्होंने राक्षसों का संहार किया । तुम द्रौणाचार्य और गगेऊ के समान हो, तुम संकट में रक्षक सहदेव के समान हो । तुम युधिष्ठर और दुर्योधन हो, तुम नल और नील के समान कुशल कार्य करने वाले हो । तुम राम और परशुराम के समान योद्धा हो तुम्हारी प्रतिज्ञा हृदय में सम्मान देने वाली है भाव यह है कि तुमने जो प्रतिज्ञा करली उसे जरूर पूरी करते हो । तुम शत्रुघ्न और भरत हो तुम चाणुर राक्षक को मारने वाले कृष्ण हो । तुम प्रद्युम्न और अविकंधी हो । तुम वीर बालक अभिमन्यु के समान हो । तुम्हारे समान पराक्रम में कोई दूसरा इस संसार में नहीं है । तुम सत्य पर मरने वाले हरिश्चन्द्र और हम्मीर के समान हो ।

संकट के समय में पाण्डवों की रक्षा करने वाले भीम थे । मैं तुम्हारे से निवेदन करती हूं कि वैसे ही अलाउद्दीन के अधीन मेरे पति राजा रत्नसेन को छुड़ाकर मेरी प्रतिष्ठा को रख लो ।

**विशेष**—(1) रूपक, उपमा, अनुप्रास अलंकार ।

(2) वीर प्रशस्ति का चित्रण ।

**गोरा बादल बीरा लीन्हा । जस अनुवंत अंगद वर कीन्हा ।।**
**सजहु सिंघासन, तानहु छातू । तुम्ह माथे जुग जुग अहिवातू ।।**
**कँवल चरन भुइँ धरि दुख पावहु । चढ़ि सिंघासन मंदिर सिधावहु ।।**
**सुनतहि सूर कँवल हिय जागा । केसरी बरन फूल हिय लागा ।।**
**जनु निसि महँ दिन दीन्ह देखाई । भा उदोत, मसि गई बिलाई ।।**
**चढ़ी सिंघासन झमकती चली । जानहु चाँद दुइज निरमली ।।**
**औ सँग सखी कुमोद तराई । ढारत चँवर मंदिर लेइ आई ।।**
**देखि दुइज सिंघासन, संकर धरा लिलाट ।**
**कँवल चरन पदमावति, लेइ बैठारी पाट ।।7।।**

**शब्दार्थ**—बीरा = बीड़ा । लीन्हा = प्राप्त किया । छातू = छत्र । अहिवातू = सौभाग्य सुख । निसि = रात्रि । मसि = कालिमा । बिलाई = समाप्त । दुइज दोपज । कुमोद = कुमुदिनी । तराई = तारे ।

**व्याख्या**—वीर गोरा-बादल ने पद्मावतो का बीड़ा ले लिया । जैसे अंगद और वीर हनुमान ने रामकाज के लिये किया वैसे हो इन दोनों वीरों ने वल किया । उन्होंने कहा हे रानी ! तुम्हारे लिये हम सिंहासन सजाकर उस पर छत्र सजायेंगे ।

तुम्हारे सिर पर युग-युग तक सौभाग्य सुख रहेगा अर्थात् हम राजा को छुड़ाकर तुम्हारे लिए अमन-चैन कर देंगे। तुम पैदल हमारे यहां आई हो, अपने चरण-कमल पृथ्वी पर रखकर तुमने कष्ट पाया है। अब सिंहासन पर चढ़ो और राजमन्दिर को प्रस्थान करो। सूर्य रूपी रत्नसेन का नाम सुनते ही कमल रूपी पद्मावती का हृदय प्रसन्नता से खिल गया। उन दोनों वीरों द्वारा कहा गया वह सुन्दर वाक्य केसरिया रंग बनकर उसके हृदय में लग गया अर्थात् पद्मावती रत्नसेन के प्रेम में अनुरक्त हो गई। जैसे रात में सूर्य दिखाई पड़ जाय और उजाला हो जाय, ऐसा ही प्रकाश उसके हृदय में हो गया और अन्धकार मिट गया। वह सखियों सहित सिंहासन पर चढ़कर प्रकाश पुंज फैलाती हुई राजमन्दिर की ओर चली मानो दूज का निर्मल चन्द्र हो। साथ में कुमुदिनी और तारों के समान सखियां पद्मावती पर चँवर ढलाती हुई रानी को राजमन्दिर में ले आईं।

दूज के निर्मल चन्द्र के समान उसे सिंहासन पर बैठा देखकर शंकर ने सम्मान हेतु द्वितीया के चन्द्र को अपने ललाट रूपी आसन पर स्थान दिया। पद्मावती के कमल रूपी चरणों का स्पर्श करके सब सहेलियों ने उसे आदर सहित पाट पर बैठाया।

विशेष—(1) उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार।

(2) गोरा बादल द्वारा अलाउद्दीन से राजा को छुड़वाने का पक्का आश्वासन देकर अपनी वीरता का परिचय दिया।

---

# गोस्वामी तुलसीदास

## केवट-प्रसंग

दो०—आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥
पितु वैभव विलास मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥
सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय विहीन मन भाव न भोरें॥
ससुर चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥
ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि कोउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥

**अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा।।**
**कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा।।**
**दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ।**
**मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ।।**

**शब्दार्थ**—आरति = आर्त्त। बिलगु = बुरा। आरज सुत = आर्य पुत्र। बादि = व्यर्थ। नात = नाते। डीठा = देखा। पद-पीठा = चरण रखने की चौकी। निधान = भण्डार। विहीन = बिना। भोहें = भूलकर भी। चक्कवद् = चक्रवर्ती। सुरपति = इन्द्र। आध = आधे। आसनु = सिंहासन। एतादृस = ऐसे। सम = समान। अगम = दुर्गम। करि = हाथी। केहरि = सिंह। सर = तालाब। सरित = नदी। कुरंग = हिरन। बिहंग = पक्षी। हुँति = लिए। परि = पड़ कर। जनि = न, मत।

**व्याख्या**—राम वन-गमन के समय सीता भी प्रिय के साथ जाना चाहती है। वह राम से विनय और हठ कर रही है। सीता कह रही है कि हे तात। मैं आर्त होकर आपके सम्मुख उपस्थित हुई हूँ, आप इसका बुरा न माने। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरण कमलों के बिना संसार में जो भी नाते-संबंध हैं सब मेरे लिए व्यर्थ हैं। भाव यह है कि आपके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है. मैं आपके साथ ही वन में चलूँगी।

सीता फिर कहती है मैंने पिता के वैभव की छटा को देखा है. जिनके चरण रखने की चौकी में सर्व सिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं अर्थात् बड़े-बड़े राजा उनके चरणों में प्रणाम करते हैं, उनकी अधीनता स्वीकार करते हैं। ऐसा वैभवपूर्ण पिता का घर भी जो सब प्रकार के सुखों का भण्डार है, पति के अभाव में मेरे मन को भूलकर भी अच्छा नहीं लगता। मेरे ससुर अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट हैं. जिनका प्रभाव चौदह लोक में फैला है। इन्द्र भी उनका आगे होकर स्वागत करता है और सम्मान से आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है। ऐसे प्रभावशाली ससुर, सुन्दर अयोध्या नगरी में निवास करते हैं प्रिय कुटुम्ब के लोग हैं और माता के समान सासुएँ हैं—सीता कहती है कि ये कोई भी श्रीराम के चरण कमलों की रज के बिना मुझे सुख देने वाले नहीं है अर्थात् प्रिय बिना व्यर्थ है। मैं जानती हूँ कि वन में दुर्गम रास्ते हैं, जंगली धरती, पहाड़, भयंकर हाथी, सिंह आदि है। अथाह तालाब और नदियां हैं। कोल, भील, हिरन और पक्षी हैं, भाव यह कि यह सब कष्ट देने वाले है, परन्तु फिर भी प्राणपति के साथ रहते हुए यह सभी कष्ट कारक, मुझे सुख देने वाले होंगे।

अतः हे स्वामी! सास और ससुर के पाँव पकड़कर मेरी ओर से विनती कीजियेगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें, और वन में जाने की अनुमति दे दे। मैं वन में आपके साथ स्वभाव से ही सुखी रहूँगी।

विशेष—(1) रूपक, उपमा, अनुप्रास अलंकार।

(2) सीता राम के साथ वनवास में जाना चाहती है। उसका बिना प्रिय के जीवन व्यर्थ है।

(3) प्रिय के साथ वन के कष्ट भी सुख में बदल जायेंगे।

**प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरें धनु भाथा।।**
**नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लगि सोचु करिअ जनि भोरें।।**
**सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी।।**
**नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना।।**
**राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती।।**
**जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उत्तर रघुनन्दन दीन्हे।।**
**मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई।।**
**राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई।।**
**दो०—रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।**
**देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं।।**

**शब्दार्थ**—श्रम = थकान। मोरें = मेरे। जनि = मत। सुमंत्रु = सुमन्त्र सारथी। विकल = व्याकुल। जनु = मानो। फनि = सर्प। अकुलाना = व्याकुल। तदपि = यद्यपि। जतन = यत्न। हित = के लिए। बसाई = बस। नाई = नवा कर। बनिक = व्यापारी। मूर = मूल। हय = घोड़े। हेरि = देखकर।

**व्याख्या**—सीता फिर कहती है कि वीरों में मुख्य तथा धनुष और बाण धारण किये मेरे प्राणनाथ और देवर लक्ष्मण साथ है, इसलिए न रास्ते की थकावट रहेगी, न भ्रम रहेगा और न मेरे मन में कुछ दुःख ही रहेगा इसलिए आप भूलकर भी सोच न करें। सारथी सुमन्त्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे साँप ने अपनी प्रिय मणि खो दी हो। उसकी हालत बुरी हो गई, नेत्रों ने कुछ दिखाई नहीं दिया, कानों ने श्रवण शक्ति खो दी, वे बहुत व्याकुल हो गये, उनसे कुछ कहते भी नहीं बना। सुमन्त्र जी की ऐसी हालत देखकर उनको समझाया बुझाया फिर भी उनके हृदय में शांति नहीं आई। सुमन्त्र जी ने वन में साथ चलने के अनेक यत्न किये (तर्क प्रस्तुत किये) परन्तु राम ने उनकी सब युक्तियों का यथोचित समाधान करके अयोध्या लौटने के लिए विवश कर दिया। सुमन्त्र जी कि स्थिति विचित्र हो गई। वे भी राम जी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते, कर्म की गति कठिन होती है, उस पर किसी का वश नहीं चलता है। न चाहते हुए भी सुमन्त्र जी राम, लक्ष्मण और सीता के चरणों में सिर नवाकर इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन ही गंवाकर लौटता है, लाभ तो दूर रहा। सुमन्त्र ने रथ को अयोध्या की ओर हाँका घोड़े श्रीराम की ओर देखकर हिहिनाने लगे अर्थात् वे भी

राम के वन गमन से खुश नहीं थे। यह सारा दृश्य देखकर निषाद लोग दुःखी होकर सिर धुन-धुन कर पछताते हैं कि राम के वियोग में ये कितने दुःखी हैं।

**जासु वियोग बिकल पसु ऐसें। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसें॥**
**बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥**
**माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥**
**चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥**
**छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥**
**तरनिउ मुनि घरनि होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥**
**एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥**
**जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥**

**शब्दार्थ**—जिइहहिं=जीवित रहेंगे। आना=लाना। मरमु=भेद, रहस्य। रज=धूल। मूरि=जड़ी। अहई=है। तें-से घटिनी=स्त्री। प्रतिपालऊँ=भरण पोषण। कबारु=धन्धा। अवसि=अवश्य ही। चहहू=चाहते हो। पखारन=धोने के लिए।

**व्याख्या**—जिनके वियोग में पशु तक इस प्रकार व्याकुल हैं, उन राम के वियोग में नगर, प्रजा, माता-पिता कैसे जीवित रहेंगे। श्रीराम ने जबरदस्ती सुमन्त्र को अयोध्या लौटाया। और तब स्वयं गंगा के तट पर आये। गंगा पार करने हेतु श्रीराम ने केवट से नाव माँगी परन्तु वह लेकर नहीं आया। वह कहने लगा मैं नाव नहीं दूँगा, आपका सारा भेद जानता हूँ। भेद, रहस्य यह है कि तुम्हारे चरणों की धूल में कोई करामात है, जो किसी भी वस्तु को मनुष्य बना देती है। वह जड़ी का काम करती है। जिसे स्पर्श करते ही पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री (अहिल्या) बन गई। अब आप ही सोचिये मेरी नाव तो काठ की है और पत्थर से कोमल है, अगर यह मुनि स्त्री बन गई तो मेरी नाव ही उड़ जायेगी, मैं लुट जाऊँगा अर्थात् रास्ता रुक जावेगा, आप गंगा पार नहीं कर पाओगे और मेरी रोजी रोटी मारी जावेगी। मैं तो इसी से सारे परिवार का भरण-पोषण करता हूँ, अन्य कोई काम भी करना नहीं जानता। इसलिए हे प्रभु! आपसे निवेदन है अगर गंगा पार जाना ही चाहते हैं तो पहले मुझे अपने चरण-कमल धोने की आज्ञा दें।

**विशेष**—केवट के भोले-भोले तर्कों का चित्रण।

**पद कमल धोई चढ़ाई नाव न नाथ उतराई चहौं।**
**मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ साँची कहौं॥**
**बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पांय पखारिहौं।**
**तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥**
**सो०—सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।**
**बिहसे करुनाऐन चितई जानकी लखन तन॥**

**शब्दार्थ**—उतराई = नाव खेने की मजदूरी। चहौं = चाहूँगा। राउरि = आपकी। आन = दुहाई। सपथ = सौगन्ध। बरु = भले ही। पै = परन्तु। लगि = तक। बैन = वचन। बिहसे = हँसे।

**व्याख्या**—केवट कह रहा है, हे नाथ ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर अवश्य चढ़ा लूँगा। मैं आपसे कुछ भी उतराई, मजदूरी भी नहीं लूँगा। हे राम ! मुझे आपकी दुहाई है और दशरथ जी की सौगन्ध है, मैं आपसे सच-सच कहता हूँ, इस बात पर लक्ष्मण भले ही तीर मार दें, पर जब तक मैं आपके पैरों को न धो लूँगा, तब तक हे तुलसी के स्वामी ! हे कृपालु ! मैं पार नहीं उतारूँगा।

श्रीराम केवट के प्रेम भरे अटपटे वचन सुनकर करुणा के सागर श्रीराम जानकी जी और लक्ष्मण जी की ओर देखकर हँसने लगे।

**विशेष**—केवट राम के चरणामृत का पान करना चाहता है। केवट की भक्ति प्रशंसनीय है।

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई। सोई करु जेहि तव नाव न जाई ॥
बेगि आनु जल पांय पखारू। होत बिलम्बु उतारहि पारू ॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किय तिहु पगहु ते थोरा ॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहि मति करषी ॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।
अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा ॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य पुन्ज कोउ नाहीं ॥

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥

शब्दार्थ—तव = तेरी। बेगि = शीघ्र। आनु = लाकर। बिलंबु = देर। जासु = जिसका। भवसिंधु = संसार रूपी सागर। निहोरा = गरज करना। तिहु = तीन। थोरा = थोड़ा। देवसरि = गंगा। करषी = खिंच गयी। रजायसु = आज्ञा। पावा = प्राप्त की। कठवता = कठौता। उमगि = उमंग। सम = समान। कोउ = कोई। पारु = पार। पुनि = फिर। मुदित = प्रसन्न।

व्याख्या—केवट की सारी बात समझकर कृपा के सागर श्रीराम मुस्करा कर बोले—भाई तू वही उपाय कर जिससे तेरी नाव न जाये। जल्दी से पानी ले आ और पाँव धो ले। हमारे को देर हो रही है, जल्दी से पार उतार दे। जिनका (नाम) एक बार नाम स्मरण करते ही मनुष्य चाहे वह कितना ही पापी क्यों न हो भव सागर के पार उतर जाता है, अर्थात् उसका उद्धार हो जाता है और जिन्होंने वामन अवतार धारण कर जगत् को तीन पग में नाप लिया था, वही कृपालु श्रीराम गंगा

पार उतरने के लिए केवट का निहोरा निकाल रहे हैं। उसकी गरज कर रहे हैं। प्रभु के केवट के प्रति इस प्रकार के वचन सुनकर गंगा की बुद्धि मोह से खिंच गयी परन्तु राम के समीप आने पर उनके पदनखों को जो उसकी उत्पत्ति के स्थान थे, पहचान कर गंगा प्रसन्न हो गयी, और उसका मोह नष्ट हो गया और यह विचार कर कि इन चरणों का स्पर्श कर मैं धन्य हो जाऊँगी हर्षित हो गयी। केवट श्रीराम की आज्ञा पाकर तुरन्त कठौते में भरकर जल ले आया। वह अत्यधिक आनन्द और उमंग से भगवान के चरण-कमल धोने लगा। इस दृश्य को देखकर सब देवता फूल बरसाकर प्रसन्न हुए कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है।

केवट राम के चरणों को धोकर, परिवार सहित स्वयं चरणोंदक पीकर, उस महान पुण्य के द्वारा अपने पितरों को भवसागर पार कर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु को गंगा के पार नाव में बैठाकर ले गया।

**विशेष**—(1) उपमा अनुप्रास अलंकार।

(2) भक्त केवट ने भक्ति मिश्रित हठ व उक्ति से चरणोदक का पान किया।

(3) गंगा विष्णु के चरणों से निकलकर पृथ्वी पर आई थी। यह पौराणिक कथा भी इसमें है।

**उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता।।**
**केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।।**
**पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी।।**
**कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई।।**
**नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा।।**
**बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।।**
**अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे।।**
**फिरती बार मोहि जो देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेवा।।**
**बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय नहिं कछु केवट लेइ।।**
**बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ।।**

**शब्दार्थ**—ठाढ़ = खड़े। सुरसरि = गंगा। गुह = निषादराज। दण्डवत = प्रणाम। एहि = इसको। हिय = हृदय। मुदित = प्रसन्न हो। अकुलाई = व्याकुल हो। काह = क्या। पावा = प्राप्त किया। दावा = अग्नि। बिधि = विधाता। भूरि = भरपूर। फिरती बार = लौटते समय। बरु = वरदान।

**व्याख्या**—निषादराज, लक्ष्मण और सीता सहित राम नाव से उतर कर गंगाजी की रेत में खड़े हो गये। तब केवट ने नाव से उतर कर प्रणाम किया। उसको प्रणाम करते देख राम को बड़ा संकोच हो रहा कि इसे उतराई का कुछ भी मजदूरी के रूप में नहीं दिया। पति के हृदय की सारी बात जानने वाली सीताजी ने आनन्द भरे मन से अपनी रत्नों से जड़ित अँगूठी अँगुली से उतारी और केवट की

और बड़ाई । कृपालु श्रीराम ने केवट से कहा, नाव की उतराई ले लो । राम का इतना कहना भर था, केवट ने व्याकुल हो के राम के चरण पकड़ लिये, और कहने लगा, हे नाथ ! आज मैंने क्या नहीं पाया है । मेरे दोष दुख और दरिद्रता की आग आज बुझ गयी है । मैं बहुत दिनों से मजदूरी कर रहा हूँ, विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी है । हे नाथ ! आपकी कृपा से मुझे अब कुछ नहीं चाहिए । लौटते वक्त आप जो कुछ भी मुझे दोगे वह प्रसाद मैं सिर चढ़ाकर लूँगा ।

श्रीराम, लक्ष्मण जी और सीता ने बहुत आग्रह किया परन्तु केवट ने कुछ नहीं लिया । तब करुणा के सागर श्रीराम ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया ।

**विशेष**—अनुप्रास अलंकार । केवट की उतराई में भवसागर पार की गति अर्थात् मुक्ति मिल गई ।

**तब मज्जन करि रघुकुलनाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ।।**
**सिर सुरसरिहि कहेउ कर जोरी । मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।।**
**पति देवर संग कुशल बहोरी । आई करौं जेहि पूजा तोरी ।।**
**सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी । भइ तब बिमल बारि बर बानी ।।**
**सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही । तब प्रभाउ जग बिदित न केही ।।**
**लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें ।।**
**तुम जो हमहि बड़ि बिनय सुनाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई ।।**
**तदपि देबि मैं देबि असीसा । सफल होन हित निज बागीसा ।।**

**प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ ।**
**पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ ।।**

**शब्दार्थ**—मंजनु = स्नान । पारथिव = पार्थिव पूजा । कर = हाथ । पुरउबि = पूर्ण । मोरी = मेरा । तोरी = तेरी । सानी = सनी हुई । विमल = निर्मल । बारि = जल । बर = श्रेष्ठ । बानी = वाणी । लोकप = लोकपाल । कर जोरें = हाथ जोड़ कर । तदपि = तो भी । देषि = दूँगी । असीसा = आशीर्वाद । बागीसा = वाणी । कोसला = अयोध्या । पूजिहि = पूर्ण होगी ।

**व्याख्या**—फिर रघुकुल के स्वामी श्रीराम ने स्नान कर पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया । सीता ने हाथ जोड़ कर गंगा मैया से कहा—हे माता ! मेरा मनोरथ पूरा करो । जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौटकर पुन: तुम्हारी पूजा करूँ । सीताजी की प्रेम के रस में सनी हुई विनती सुन गंगाजी के निर्मल जल में से श्रेष्ठ वाणी सुनाई दी । हे रघुवीर की प्रियतमा सीता ! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत में कौन नहीं जानता है । तुम्हारी कृपापूर्ण दृष्टि से तो लोक-पाल का पद प्राप्त करते हैं और सारी सिद्धियाँ हाथ जोड़कर तुम्हारी सेवा करती

रहती हैं। फिर भी तुम विनय करती हो। तुमने जो मुझको विनय की है यह तो मुझ पर कृपा की है और मुझे सम्मान ही दिया है। फिर भी हे देवी सीता ! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिए तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ।

तुम अपने प्राणनाथ राम और देवर लक्ष्मण के सहित कुशलतापूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनोकामना पूरी होगी, तुम्हारा यश जगतभर में छा जायेगा।

**विशेष**—सीता द्वारा मनोरथपूर्ण हेतु गंगा से प्रार्थना और गंगा द्वारा सीता को आशीर्वाद का चित्रण।

---

# चित्रकूट में राम

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

**शब्दार्थ**—श्रुति = वेद। सृजति = सृजन। हरति = संहार। अहीसु = सर्पराज। खल = दुष्ट। निसिचर = राक्षस। निगम = वेद।

**व्याख्या**—राम की महिमा का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि हे राम ! आप वेदों की मर्यादा की रक्षा करने वाले जगत् के ईश्वर और जानकी आपकी ही स्वरूप-माया है। जो कृपा के भण्डार आपका रुख, आदेश पाकर जगत् निर्माण पालन और संहार करती है। हजार-हजार मस्तक वाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को सिर पर धारण करने वाले हैं, वही बराबर के स्वामी शेष जी लक्ष्मण हैं। हे राम आप कृपा करके ही राजा का (मानव रूप में) शरीर धारण करके इस पृथ्वी पर से राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं।

हे राम ! आपका स्वरूप (महिमा) वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त अकथनीय और अस्पष्ट है। अर्थात् असाधारण है। वेद तुम्हारी महिमा निरन्तर 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं, वर्णन करना उनके वश में भी नहीं है।

**विशेष**—राम की महिमा का चित्रण किया गया है। वाल्मीकि ऋषि कह रहे हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे ।।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा।
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जोई।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।
चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।
पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुच उँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउं ।।

**शब्दार्थ**—बिधि=ब्रह्मा । हरि=विष्णु । संभु=शंकर । तेउ=वे । सोइ=वही । प्राकृत=साधारण, स्वाभाविक । जड़=मूर्ख । बुध=ज्ञानी । ठाऊँ=स्थान ।

**व्याख्या**—हे राम ! यह जगत तो दृश्य है, आप उसके देखने वाले हो । आप तो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचाने वाले हो अर्थात् उनसे ऊपर हो उनके भी स्वामी हो तब वे ही जो जगत के कर्त्ता, धर्ता हैं आपके रहस्य को, शक्ति को नहीं जानते तब फिर इस संसार में और कौन है, जो आपको पूर्णरूपेण जानता हो। वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हो, अर्थात् कृपा कर देते हो और आपको जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है अर्थात् राममय हो जाता है। हे रघुनन्दन ! भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चन्दन, आपकी अनुकम्पा से ही भक्त आपको जान पाते हैं। अर्थात् बिना रामकृपा के राम स्वरूप को नहीं जान सकते आपकी देह चिदानन्दमय-कर्मबन्धनमुक्त, निदेह विशिष्ट मायिक नहीं है, और सब प्रकार के विकारों से रहित है। इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। हर किसी को इसका ज्ञान नहीं है। आपने देवता और सन्तों के कार्य के लिए यह मानव शरीर धारण किया है, आचरण साधारण राजाओं की तरह से कहते और करते हैं। अर्थात् इस रूप में असाधारण कुछ भी नहीं दिखाई देता है। बाल्मीकि आगे कहते हैं कि आपके चरित्र को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानी लोग सुख को प्राप्त होते हैं। आप जो कुछ भी कहते, करते हैं वह सब सत्य ही है क्योंकि जैसा स्वांग भरा है वैसा नाचना भी पड़ता है, अर्थात् इस समय आप मनुष्य रूप में हो अतः मनुष्य के अनुरूप व्यवहार करना ठीक है।

आप मेरे से पूछते तो कि मैं कहाँ निवास करूँ ! आप तो सर्वव्यापी हो, मैं यह पूछते हुए सकुचाता हूँ कि जहाँ आपका निवास न हो वह स्थान मुझे बता दीजिए तब मैं आपको रहने के लिए स्थान दिखाऊँ।

**विशेष**—बाल्मीकि ऋषि द्वारा राम की महिमा का, शक्ति का चित्रण किया गया।

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने । सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ।।
बाल्मीकि हँस कहहिं बहोरी । बानी मधुर अमिअ रस बोरी ।।
सुनहु राम अब कहउँ निकेता । जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ।।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ।।
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ।।

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनी जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ।।

**शब्दार्थ**—महुँ = मैं । बहोरी = फिर । अमिअ = अमृत । बोरी = डुबायी हुई । निकेता = स्थान । श्रवन = कान । सुभग = सुन्दर । हिय = हृदय । रूरे = आपके । निदरहिं = निरादर । बिमल = निर्मल ।

**व्याख्या**—मुनि वाल्मीकि के प्रेम रस में सने हुए वचन सुनकर श्रीराम जी संकुचा कर मन में मुस्कराये । वाल्मीकि हँसकर फिर अमृत रस में भीगी हुई मीठी वाणी बोलते हैं कि हे रामजी ! सुनिये, अब में आपको वह स्थान बताता हूँ जहाँ आप लक्ष्मण, सीता सहित निवास कर सकते हो । जिन भक्तों के कान समुद्र के समान आपकी सुन्दर-सुन्दर कथारूपी अनेक सुन्दर नदियों से निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूर्ण नहीं होते अर्थात् जो भक्त आपकी यश-गाथा दिन-रात सुनते-सुनते नहीं अघाते, उनके हृदय आपके निवास हेतु सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक ही बना रखा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते रहते है और आपके सौन्दर्य रूपी मेघ के एक बूँद जल से सुखी हो जाते है अर्थात् राम कृपा के अलावा दूसरों की अनुकम्पा उन्हें नहीं चाहिए । हे रघुनाथ जी ! उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मण और सीताजी सहित निवास कीजिये । भाव यह है कि भक्त-हृदय राम का निवास गृह है ।

आपके यश रूप निर्मल मानसरोवर में जिन भक्तों की जिह्वा हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे राम ! आप कृपा कर उनके हृदय में निवास कीजिये ।

**विशेष**—(1) उपमा रूपक अलंकार,

(2) वाल्मीकि द्वारा राम के निवास हेतु भक्त-हृदय का चित्रण ।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा ।।
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं । प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ।।
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी । प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ।।

कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदय नहिं दूजा ।।
चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।।
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ।।
तरपन होम करहिं बिधि नाना । बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ।।
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जिय जानी । सकल भाय सेवहिं सनमानी ।।
सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ ।।

**शब्दार्थ**—सुचि = पवित्र । नरसा = नासिका । पट-भूषन = वस्त्र, आभूषण । द्विज = ब्राह्मण । जेवाँइ = भोजन कराना । दान = दान-दक्षिणा । जियँ = हृदय । सनमानी = सम्मान से । रति = प्रीति ।

**व्याख्या**—वाल्मीकि फिर कहते हैं जिसकी नासिका प्रभु (राम) के पवित्र और सुगन्धित सुन्दर प्रसाद को नित्यप्रति आदर सहित ग्रहण करती है, जो आपको पहले अर्पण करते हैं फिर भोजन करते हैं, और आपके प्रसाद स्वरूप ही वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं । जिनके सिर देव, गुरु और ब्राह्मण को देखकर नम्रता से प्रेम सहित स्वत: ही झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य श्रीराम के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में श्रीराम का ही भरोसा है अन्य पर नहीं । जिनके चरण श्रीराम के तीर्थों में चल कर जाते, हे राम ! आप उन भक्तों के हृदय में निवास कीजिये । जो नित्य राम नाम रूपी मन्त्र राज का जाप करते हैं और परिवार सहित आपकी ही पूजा करते हैं । जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन करा कर बहुत सा दान करते हैं तथा गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक बड़ा मान कर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं । और ये सब कर्म करके एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्रीराम के चरणों में हमारी प्रीति हो । उन लोगों के मन रूपी मन्दिरों में सीताजी और रघुकुल को आनन्द देने वाले आप दोनों निवास कीजिए । अर्थात् जिन भक्तों की दिनचर्या के कार्य व्यापार राम के ही अनुकूल हो आप वहाँ निवास करो ।

**विशेष**—भक्तों के हृदय में ही राम निवास करते हैं । उसके अलावा उन्हें अन्यत्र नहीं रखा जा सकता ।

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।।
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ।।
नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज तपबल आनी ।।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि ।।
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं । करहिं जोग जप तप तन कसहीं ।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू । राम देहु गौरव गिरिबरहू ।।
चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ ।।

**शब्दार्थ**—कोह = क्रोध । भान = अभिमान । पुनीत = पवित्र । निज = अपने । पातक = पाप । पोतक = बालक । देहु = देओ । गिरिवरदू = चित्रकूट ।

**व्याख्या**—बाल्मीकि फिर कहते हैं, जिनके न तो काम, क्रोध मद, अभिमान और मोह है, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है, हे रघुनाथ ! आप ऐसे भक्तों के हृदय में निवास कीजिए । वहाँ एक पवित्र नदी भी है, जिसकी पुराणों में महिमा गाई गई है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया अपने तपोबल से यहाँ लायी थी । वह गंगा जी की ही धारा है. उसका नाम मन्दाकिनी है । वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिए डाकिनी रूप है । अर्थात् सारे पापों का विनास करने वाली है । और अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीर कसते रहते हैं, कष्ट देते रहते हैं । हे राम ! चलिये, सबके परिश्रम को सफल कीजिये और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव प्रदान कीजिए । भाव यह है कि सब प्रकार से निवास का उचित स्थान चित्रकूट पर्वत है ।

महामुनि बाल्मीकि ने चित्रकूट की पर्वत की अपार महिमा का बखाना किया । तब सीता सहित दोनों भाइयों ने श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनी में स्नान किया ।

रघुवर कहेउ लखन भल घाटू । करहु कतहुं अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा । चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥
नदी पनच सर सम दम दाना । सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी । चुकइ न घात मार मुठ भेरी ॥
अस कहि लखन ठाउँ देखरावा । थलु बिलोकि रघुवर सुखु पावा ॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना । चले सहित सुर थपति प्रधाना ॥
कोल किरात वेष सब आए । रचे परन तृन सदन सुहाए ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुई साला । एक ललित लघु एक बिसाला ॥

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत ।
सोह मदनु मनि वेष जनु रति रितुराज समेत ॥

**शब्दार्थ**—घाटू = घाट । भल = अच्छा । ठाहर = ठहरने की । करार = किनारा । जिमि = जैसा । नारा = नाला । पनच = प्रत्यंचा । सर = बाण । अहेरी = शिकारी । मुठभेरी = सामने । ठाउँ = स्थान । थपति प्रधाना = देव प्रधान । थवई = विश्वकर्मा । परन = पत्तों । साला = कुटिया । ललित = सुन्दर । लघु = छोटी । निकेत = घर । मदनु = कामदेव । रति = काम स्त्री ।

**व्याख्या**—श्रीराम ने चित्रकूट की शोभा देखकर लक्ष्मण ने कहा—लक्ष्मण बड़ा अच्छा घाट है, अब यहीं कहीं ठहरने की उचित व्यवस्था करो । तब लक्ष्मण ने नदी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा और उसकी शोभा से प्रसन्न हो बोले कि

इसके चारों तरफ धनुष के आकार जैसा एक नाला फिरा हुआ है। मन्दाकिनी नदी उस धनुष प्रत्यंचा के समान शोभित है और राम, दम, दान आदि उस धनुष के बाण के समान हैं। कलियुग के समस्त पाप उसके अनेक हिंसक पशु शिकार हेतु निशाने है। चित्रकूट ही मानो अचूक शिकारी है जिसका कभी भी निशाना गलत नहीं होता और सामने से मारता है। ऐसा कह कर लक्ष्मण ने सुन्दर स्थान दिखलाया। स्थान को देख राम बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने सुख का अनुभव किया। इस प्रकार जब देवताओं ने जाना कि श्रीराम का मन यहीं रम गया है, तब वे देवताओं के प्रधान थवई विश्वकर्मा को साथ लेकर राम की कुटिया बनाने के लिए चले। सब देवता कोल-भीलों आदि के भेष में आये और उन्होंने पत्तों और घासों के सुन्दर मनमोहक घरों का निर्माण कर दिया। दो अति सुन्दर कुटिया बनायी जिनकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। उनमें से एक बड़ी और एक छोटी थी जो अत्यधिक सुन्दर है।

लक्ष्मण-जानकी सहित श्रीराम घास-पत्तों की सुन्दर कुटिया में शोभायमान हैं। मानो कामदेव ही मुनि का वेश धारण करके पत्नी रति और बसन्त ऋतु के साथ सुशोभित हो।

**विशेष**—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार।

---

# विनय पत्रिका

(1)

सुन मन मूढ़ ! सिखावन मेरी
हरिपद-विमुख लहयो न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ।।
बिछुरे ससि रबि मम नैनति तें, पावन दुख बहुतेरो ।।
भ्रमत स्रमित निसि-दिबस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बडेरो ।।
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।।
तजे चरन अजहूं न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ।।
छुटें न बिति भजे बिनु रघुपति स्रुति सन्देह निबेरो ।।
तुलसीदास अब आस छाँडि करि, होहु राम कर चेरो ।।

**शब्दार्थ**—मूढ़ = मूर्ख । ससि-रबि = चन्द्रमा-सूर्य । स्रमित = थके हुए । रिपु = शत्रु । सुरसरिता = गंगा । छटैं = छुटे । स्रुति = वेद । निबेरो = दूर कर दिया । चेरो = दास ।

**व्याख्या**—तुलसी अपने मन को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे मूर्ख मन ! तू मेरी यह शिक्षा सुन, श्री भगवान के चरणों से विमुख होकर आज तक किसी को भी सुख प्राप्त नहीं हुआ है । हे दुष्ट ! अभी भी समय है, इसको तू खूब सोच-समझ ले । जब से चन्द्र और सूर्य भगवान के मन और नेत्रों से अलग हुए हैं, तब से ही वे भारी दुख का सामान कर रहे हैं । वे दोनों रात-दिन आकाश में थके हुए चक्कर लगाते रहते हैं । उन्हें आराम नहीं । वहाँ भी उनका शत्रु राहु पीछा करता रहता है । यद्यपि गंगा देव-सरिता के गौरव को प्राप्त है, बड़ी पावन है और उसका यश तीनों लोकों में व्याप्त है, तब भी भगवान के चरणों से अलग होने के कारण आज तक उसका बहना (भटकना) बन्द नहीं हुआ है । बिना श्री राम के भजे विपत्तियों का नाश नहीं होगा, वेदों ने इस सन्देह को मिटा दिया है । अर्थात् राम भजन से ही विपत्तियाँ मिट सकती हैं । हे तुलसीदास ! इसलिए तू सारी आशाओं को त्याग कर श्रीराम का दास हो जा ।

**विशेष**—(1) बिछुरे ससि-रबि मन-नैननि तें । तजे चरन अजहूँ न मिटत । में पौराणिक कथायें हैं ।

(2) तुलसी अपने मन को राम भक्ति में अनुरक्त होने के लिए समझा रहे हैं ।

(2)

**केसव कहि न जाइ का कहिये ।**
**देखत तब रचना विचित्र अति, समुझि मनहि मन रहिये ।।**
**सून्य भीति पर चित्र रंग नहि, तनु बिनु लिखा चितेरे ।**
**धोये मिटइ न मरई भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ।।**
**रविकर-नीर बसे अति दारुन, मकर रूप तेहि माही ।**
**बदन-हीन सों ग्रसे चराचर, पान करन जे जाहीं ।।**
**कोऊ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानें ।।**
**तुलसीदास परिहरें तीन भ्रम, सो आपन पहिचानें ।।**

**शब्दार्थ**—का = क्या । सून्य भीत = माया रूपी दीवार । चितेरे = चित्रकार परमात्मा । रवि = सूर्य, संसार मोह । मकर = मगरमच्छ, निराकार काल । परिहेरे = छोड़कर ।

**व्याख्या** – हे केशव ! कुछ कहा नहीं जाता, क्या कहूँ ? संसार की अद्भुत रचना देखकर मन में यह समझ कर की यह आपकी लीला है । कुछ भी वर्णन करते नहीं बनता ।

कैसी विचित्र रचना है । इस संसार रूपी चित्र को निराकार रूपी चित्रकार ने शून्य रूपी माया की सुन्दर दीवार पर बिना रंग के अर्थात् संकल्प से ही बना दिया है । साधारण चित्र तो मिट जाते हैं परन्तु यह माया के चित्र किसी भी प्रकार धोने से भी नहीं मिटते हैं । साधारण चित्र तो जड़ रूप में होते हैं उसे मृत्यु का ड

नहीं लगता परन्तु इसे मरण का भय बना रहता है। साधारण चित्र को देखने से सुख मिलता है परन्तु इस संसार रूपी भयानक चित्र की ओर देखने से दुख होता है। अर्थात् मोह ममता जन्य भय बना रहता है।

सूर्य की किरणों में ग्रीष्म में जो भ्रमवश जल दिखाई देता है, उसमें एक भयानक बिना मुख का मगर निवास करता है। वहाँ जो भी जड़ या चेतन जल पीने जाता है वह मगर उसे ग्रस लेता है। भाव यह है कि संसार मृगजल के समान भ्रमात्मक है, जैसे मृगतृष्णा में मृग छटपटाकर मर जाते हैं वैसे ही मिथ्या-संसार में प्राणी सुख खोजना चाहता है, वह वहाँ मोह में फँस जाता है। एक दिन मुख विहीन अर्थात् अव्यक्त काल उन्हें खा जाता है।

कोई तो इस रचना को सत्य मानता है, कोई मिथ्या मानता है, कोई इसे सत्य और मिथ्या दोनों मानता है। अर्थात् अद्वैतवादी इस जगत को मिथ्या और भ्रममात्र मानते हैं, उनका मत है कि ब्रह्म सत्य है। द्वैतवादी और विशिष्ट द्वैतवादी कर्मप्रधान जगत को सत्य मानता है। तुलसीदास कहते हैं कि मेरे मन से यह तीनों ही भ्रमात्मक है। जो सब कुछ श्री हरि लीला ही मानता है, और इन तीनों से छुटकारा पा जाता है, वही वास्तविक सत्य को पहचान लेता है, और इसी में भलाई है।

**विशेष**—सृष्टि रचना को समझने में नाना दार्शनिकों का विवेचन। निराकार ईश्वर की लीला को कोई नहीं समझ पाया है।

(3)

**ऐसो को उदार जग माहीं।**
**बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरसि कोउ नाहीं।।**
**जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।।**
**सो गति देत गीध सबरी कहुँ प्रभु न बहुत जिय जानी।**
**जो सम्पत्ति दससीस अपरि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।।**
**सो सम्पदा विभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं।**
**तुलसीदास सब भाँतिं सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।**
**तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो।।**

**शब्दार्थ**—उदार = उदार भावना वाला। को = कौन। द्रवे = प्रसन्न हो। सरिस = समान। गति = मुक्ति। अरपि = प्राप्त की।

**व्याख्या**—संसार में ऐसा कौन उदार भावना वाला है जो बिना ही सेवा किये दीन-जनों को निहाल कर देता है, यह सिवाय राम के कोई नहीं कर सकता। बड़े-बड़े तत्व ज्ञानी, मुनि भी योग, वैराग्य आदि अनेक साधन करने के बाद भी परम गति अर्थात् मुक्ति को नहीं प्राप्त कर सकते, उसे ही श्री राम अपने मन में कुछ भी न मानते हुए, सहज में ही गीध (जटायु) और शबरी को दे देते हैं। राम कितने उदार हैं। रावण ने शिवजी को अपने दसों सिरों पर चढ़ाकर प्रसन्न कर जो सम्पदा

प्राप्त की थी उसे ही श्री रघुनाथ जी ने बड़े संकोच सहित विभीषण को दे दी। संकोच इसलिए कि यह सम्पदा तो अनुवंशिक रूप में उसे मिलती ही, मैंने क्या दिया। तुलसीदास कहते हैं कि अरे मन ! जो तू सब प्रकार से सर्व सुख चाहता है तो भी राम का भजन कर। कृपा के सागर राम तेरे मन की सारी मनोकामनाओं को पूरा करेंगे और सभी मनोरथ सफल हो जायेंगे।

**विशेष**—(1) श्रीराम के उदार भाव की महिमा का वर्णन किया।

(2) गीध जटायु—छोटे प्राणियों का राम ने उदार किया था।

(4)

**जो निज मन परिहरै विकारा।**
**तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय लोक अपारा।।**
**सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये, मन कीन्हें बरिआई।**
**त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाई।।**
**असन बसन, पशु, बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महं रज जैसे।**
**सरग नरक चर, अचर लोक बहु, बसत मध्य तन तैसे।।**
**बिटप-मध्य पुतरिका, सूत महं कंचुकि बिनहि बनाये।**
**मन महं तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाए।।**
**रघुपति-भक्ति-बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।**
**तुलसिदास कह चिद-विलास जग बूझत बूझत बूझै।।**

**शब्दार्थ**—संसृति = संसार। मध्यस्थ = उदासीन, न मित्र भाव न शत्रु भाव। बरिआई = जबरदस्ती। उपेच्छनीय = उदासीन। पुतरिका = मूर्ति। छालित = धोया हुआ, स्वच्छ। चित् = चैतन्य।

**व्याख्या**—यदि यह मन अपने विकारों को छोड़ दे तो फिर द्वैतभाव से उत्पन्न संसार दुख, भ्रम, अपार शोक आदि क्यों हो। यह सारे दुःख मन के विकारों के कारण, मन निश्चत न होने के कारण ही होते हैं। शत्रु, मित्र और उदासीन इन तीनों की मन ने ही हठपूर्वक कल्पना कर रखी है। शत्रु को साँप के समान त्याग देना चाहिए, मित्र को सुवर्ण की तरह ग्रहण करना चाहिये और उदासीन की तृण के समान उपेक्षा कर देनी चाहिये। उसकी तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए। यह सब मन की ही कल्पनाएँ हैं।

जिस प्रकार बहुमूल्य मणि में भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकार की वस्तुएँ समाई रहती है, वैसे ही मन में स्वर्ग, नरक चर अचर और बहुत से लोक समाये रहते हैं। भाव यह है कि जैसे मणि के मूल्यों में जो चाहे खरीदा जा सकता है, वैसे ही मन रूपी मणि के प्रताप से किसी भी लोक में जा सकता है। जैसे पेड़ अर्थात् काठ के बीच में पुतली (मूर्ति) और सूत के वस्त्र, बिना बनाये ही विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार मन में भी समय-समय पर अनेक शरीर जो उसमें लीन रहते हैं, प्रकट

हो जाते हैं। भाव यह है कि मन की वासनाएँ जन्म के लिए उत्तरदायी होती है। जैसी कामना होगी वैसा ही शरीर धारण करना पड़ेगा। इस मन के यह विकार कब छूटेंगे जब श्री रघुनाथ जी की भक्ति रूपी जल से चित्त धुलकर निर्मल हो जायेगा। तब बिना प्रयास के सत्यरूप परमात्मा दृष्टिगोचर हो जायेगा। तुलसीदास कहते हैं कि निद्रानन्द, अखण्ड आत्मानन्द समझते-समझते ही समझ में आवेगा।

**विशेष**—(1) यहाँ क्रम अलंकार है।

(2) राम कृपा बिना कुछ भी समझ नहीं आ सकता।

# कवितावली

**अवधेस के द्वारे सकारें गई, सुत गोद के भूपति लै निकसे।**
**अवलोकिहौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिग से ॥**
**'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।**
**सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे ॥1॥**

**शब्दार्थ**—अवधेस = अवधपति दशरथ। अवलोकि = देखकर। बिमोचन = मिटाने वाले। धिक = धिक्कार। रंजन = प्रसन्न होना। जातक = बच्चा। ससि = चन्द्रमा। सरोरुह = कमल। बिकसे = खिल गये।

**व्याख्या**—राम के बाल रूप का वर्णन करती हुई एक सखि, दूसरी सखी से कह रही है, कि मैं प्रातःकाल अयोध्यापति महाराज दशरथ के द्वार पर गयी। उसी समय महाराज दशरथ बालक राम को अपनी गोद में लेकर बाहर निकले। सारे शोकादि को हरने वाले उस बालक राम की सुन्दरता देखकर मैं ठगी रह गयी, उससे सुन्दर बालक मैंने नहीं देखा। उसे देखकर जो मोहित न हो, उन्हें धिक्कार है। बालक राम के अंजन रंजित मनोहर नेत्र खंजन-पक्षी के बच्चे के समान सुन्दर व चंचल थे। हे सखि ! वे सुन्दर नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो चन्द्रमा के भीतर दो समान रूप वाले नवीन नीलकमल खिले हुए हों।

**विशेष**—(1) उपमा, रूपक अलंकार।

(2) बालक राम का मनोहर चित्रण।

**तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन, कंज की मंजुलताई हरैं।**
**अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ॥**
**दमकैं दंतियाँ दुत दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।**
**अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन-मंदिर में बिहरैं ॥2॥**

**शब्दार्थ**—दुति = आभा। सरोरुह = कमल। कंज = कमल। मंजुल = सुन्दर। अनंग = कामदेव। दामिनी = बिजली। बिहरैं = विहार करते हैं।

**व्याख्या**—अयोध्यापति दशरथ के चारों पुत्रों की सुन्दरता का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि उनके शरीर की आभा नीलकमल के समान है तथा नेत्रों का सौन्दर्य ऐसा है कि कमल के सौन्दर्य को हरते हैं। बालक विविध खेल-खेलते हैं, सारा शरीर धूल से भर जाता है, वे धूल से भरे होने पर भी अति सुन्दर लगते हैं और कामदेव की महान शोभा को भी दूर कर देते हैं। अर्थात् कामदेव की शोभा भी उनकी सुन्दरता के समक्ष टिक नहीं पाती है। उनके नन्हें-नन्हें दाँत बिजली की चमक के समान चमकते हैं और वे किलक-किलक कर मनोहर बाल लीलाएँ करते हैं। भाव यह है कि आनन्द विभोर हो किलकारियाँ करते रहते हैं। इस प्रकार शोभा से भरे अयोध्यापति महाराज दशरथ के चारों पुत्र तुलसीदास के मन रूपी मन्दिर में सदैव विहार करते रहते हैं।

**विशेष**—(1) उपमा, रूपक अलंकार।

(2) बाल सौन्दर्य व बाल मनोविनोद का सुन्दर चित्रण।

**पग-नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।**
**नवनील कलेवर पीत भँगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिये॥**
**अरबिंद सो आनन, रूप मरंद अनन्दित लोचन-भृंग पिये।**
**मन मों न बस्यो अस बालक जो 'तुलसी' जग में फल कौन जिये॥3॥**

**शब्दार्थ**—पहुँची = हाथ का आभूषण विशेष। कर = हाथ। कलेवर = शरीर। पीत-भँगा = पीला भँगुला। नृपु = राजा। अरबिन्दु = कमल। आनन = मुख। मरंद = मकरंद। भृंग = भौंरे। अस = ऐसा।

**व्याख्या**—बालक राम के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं, बालक राम के सुन्दर चरणों में नूपुर, कर-कमलों में सुन्दर पहुँची और हृदय पर मनोहर मणियों की माला शोभा दे रही है। राम के नवीन श्याम शरीर पर पीले रंग का भँगुला अति सुन्दर रूप में झलकता है। ऐसे शोभा युक्त राम को महाराज दशरथ गोद में लेकर पुलकित हो रहे हैं। बालक राम का मुख कमल के समान सुन्दर था, जिसके सौन्दर्य रूपी मकरन्द का पान कर देखने वाले के नेत्र रूपी भौंरे आनन्दमग्न हो जाते थे। तुलसीदास कहते हैं यदि मन में ऐसा सुन्दर बालक न बसा तो संसार से जीवित रहने से क्या लाभ है। अर्थात् राम अत्यन्त सुन्दर हैं, जिनके रूप की शोभा को देखकर जीवन सार्थ हो जाता है।

**विशेष**—उपमा, रूपक अलंकार।

**कबहूँ ससि माँगत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।**
**कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥**
**कबहूँ रिसिआइ कहैं हठि कें, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।**
**अवधेस के बालक चारि सदा, 'तुलसी' मन मन्दिर में बिहरैं॥4॥**

शब्दार्थ–ससि = चन्द्रमा। आरि = हठ। निहारि = देखकर। मोद = आनन्द। रिसिआइ = रुठकर। अरैं = अड़ते हैं।

व्याख्या—अवधपति दशरथ के पुत्रों के बाल रूप का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि बालक चन्द्रमा को देखकर, उसे माँगने का हठ करते हैं। कभी अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर डर जाते हैं। कभी हाथों से ताली बजा-बजा कर नृत्य करते हैं और आनन्द विभोर हो उठते हैं। इस प्रकार की हरकतों को देकर माताओं के हृदय आनन्द से भर जाते हैं। कभी बालक रूठ जाते हैं, मनाने पर भी नहीं मानते। कभी हठपूर्वक कुछ माँगते हैं और जिस वस्तु के लिए अड़ जाते हैं उसे लेकर ही मानते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि अयोध्यापति महाराज दशरथ के ये चारों बालक मेरे मन मन्दिर में सदैव विहार करते हैं।

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद, जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥5॥

शब्दार्थ—दूलह = दूल्हा। सीय = सीता। जानकी = सीता। पल = पलकें। टारत = हिलाना।

व्याख्या—सीता राम के विवाह का वर्णन करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि राजमहल में श्री राम दुल्हा और श्री जानकी जी सुन्दर दुल्हिन बनी हुई हैं। इस मंगल बेला पर नगर की समस्त सुन्दर स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही है और युवा ब्राह्मण लोग मिलकर वेद का पाठ कर रहे हैं। इस पावन अवसर में जानकी जी अपने हाथ के कंकण नग में पड़ रही श्री राम की परछाई निहार रही हैं. राम की छवि देखकर सीता सुधि भूल गयी है। अर्थात राम रूप की शोभा में भाव विभोर हो मन को लीन कर लिया। सीता के हाथ जहाँ के तहाँ रुक गये हैं और वह पलकें भी नहीं हिलाती है। भाव यह कि राम की शोभा निहारते हुए स्थिर, मूर्ति सी हो गई है।

विशेष—सीता का राम के अनुराग का वर्णन।

पुर तें निकसी रघुवीर-वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूख गये मधुराधर वै॥
फिर बूझति हैं 'चलनो' अब केतिक, पर्णकुटी करिहो कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अति चारु चली जल च्वै॥6॥

शब्दार्थ – पुर = नगर। मग = रास्ता। डग = कदम। भाल = ललाट। मधुराधर = मधुर होठ। तिय = पत्नी। चारु = सुन्दर। जल च्वै = जल वाहन।

व्याख्या—राम वन गमन के समय साथ में पत्नी सीता भी अयोध्या नगर से राम के साथ निकली। सीता ने मन में धैर्य धारण कर वन मार्ग में दो-चार कदम ही रखे थे कि थकावट से उनके ललाट पर पसीने की बूँदें झलकनें लगी और मधुर

होठ सुख गये। वह व्यथित हो, राम से पूछने लगी कि और कितनी दूर चलना है, विश्राम हेतु अपनी पर्णकुटी कहाँ बनायेंगे। राम सीता की व्यथा समझ गये और सीता की व्याकुलता को देखकर राम की सुन्दर आँखों में प्रेम के आँसू ढुलक पड़े।

**विशेष**—सीता की कोमलता व राम का सीता के प्रति अनुराग का चित्रण किया गया है।

**एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।**
**परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥**
**'तुलसी' अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौं जू।**
**बरु मारिय मोहिं बिना पग धोयै हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥7॥**

**शब्दार्थ**—एहि = इस। तें = से। अहै = पर। लौं = तक। परसें = स्पर्श से। तरनी = नाव। घरनि = स्त्री। अवलंबु = सहारा। लरिका = बाल-बच्चे। बरू = चाहे।

**व्याख्या**—राम गंगा पार करना चाहते हैं, केवट पैर धोये बगैर नाव पर नहीं बैठता है। इस मधुर वार्तालाप का वर्णन तुलसी कर रहे हैं। राम केवट से नाव मांग रहे हैं, केवट जवाब देता है, हे राम! इस घाट से थोड़ी ही दूर पर केवल कमर तक पानी है, चलिए मैं आपको पानी की थाह दिखला दूँ, विशेष डरने की बात नहीं है। आप निकल जाओ, मैं तो आपको नाव पर चढ़ाऊँगा नहीं, क्योंकि अहिल्या के समान आपके चरणों में लगी रज का स्पर्श कर यदि नाव का उद्धार हो गया, तो मैं घर की स्त्री को कैसे समझाऊँगा? मैं सच कहता हूँ जीविका चलाने के लिए मेरे पास और कुछ अवलम्ब भी नहीं हैं, अतः फिर मैं गरीब अपने बाल-बच्चों का पालन किस प्रकार करूँगा? हे नाथ! बिना आपके चरणों को धोये मैं नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा, चाहे आप नाराज होकर मुझे मार डालिये।

**विशेष**—केवट के प्रेम हठ का अति सुन्दर वर्णन किया है। राम के चरणामृत पान से ही केवट की मुक्ति हो सकती है अतः वह राम के चरण पखार कर पीना चाहता है।

**रावरे दोष न पाँयन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।**
**पाहन तें बन बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥**
**पावन पाँय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।**
**'तुलसी' सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभ जानकी ओर हहा है॥8॥**

**शब्दार्थ**—रावरे = आपके। तें = से। बाहनु = सुन्दर स्त्री। आयसु = आज्ञा। बर = श्रेष्ठ। बैन = वचन। हहाकर = ठहाका मार कर।

**व्याख्या**—गंगा अवतरण के समय आई समस्या को केवट बड़े भोलेपन से समझा रहा है। हे राम! इसमें आपके कोमल चरणों का कोई दोष नहीं है, इसमें तो आपके चरणों पर लगी धूल का प्रभाव ही बड़ा है। जिसके स्पर्श मात्र से ही

अहिल्या पत्थर से सुन्दर स्त्री के रूप में हो गई, अतः इस नौका का उद्धार हो जाना कौनसी बड़ी बात है। यह तो अति सरल है क्योंकि पत्थर की सिला की अपेक्षा तो यह काठ की नाव अति कोमल है और इस पर इसे पानी खाये जा रहा है अर्थात रात-दिन पानी में चलने से और अधिक कोमल हो गयी है। अतः हे राम ! मैं तो आपके पवित्र चरण कमल को धोकर ही नाव पर चढ़ाऊँगा। कहिए इसमें आपकी क्या आज्ञा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि केवट के इस प्रकार के श्रेष्ठ चतुराई से भरे वचन सुनकर, सारी बात समझ कर श्री राम, जानकी जी की ओर देखकर ठहाका मार कर हँसे।

**रावन सो राजरोगु बाढ़त विराट उर,**
**बिनु दिनु बिकल सकल सुख-राँक सो।**
**नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,**
**होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो॥**
**राम की रजाय तें रसायनी समीरसूनु,**
**उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।**
**जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,**
**रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥9॥**

**शब्दार्थ**—बिकल = व्याकुल। राँक = हीन। बिसोक = शोकरहित। ओत = आराम। मनाक = थोड़ा सा। रजाइतें = आज्ञा से। पयोधि = समुद्र। सरबाक = प्याला, शकोरा। जातुधान बुट = राक्षस रूपी बटियाँ। जातरूप = स्वर्ण। जतन— यत्नपूर्वक। मृगांक = रसौषधि विशेष।

**व्याख्या**—विराट् पुरुष के हृदय में रावण रूपी राजरोग भयंकर रूप में बढ़ रहा था, जिससे वह व्याकुल हो दिनोंदिन सारे सुखों से हीन होता जा रहा था, अर्थात् दुःख बढता ही जा रहा था। भाव यह है कि रावण असह्य होता जा रहा था। इस रोग की, रावण विनाश की देवता, सिद्ध और मुनिगण अनेक प्रकार की औषधि करके हार गये थे अर्थात् रावण विनाश के सारे प्रयत्न विफल हो गये। परन्तु न तो वह विराट् पुरुष शोकरहित होता था न कुछ भी चैन को प्राप्त करता था। तब श्रीराम की आज्ञा से रसवैद्य हनुमान ने समुद्र के पार जाकर लंकारूपी शिकारे को ठीक करके राक्षस रूपी जडी-बूटियों के रस में लंका के स्वर्ण और बहु-मूल्य रत्नों को यत्नपूर्वक फूँककर मृगांक बना डाला। भाव यह कि रावण का नाश किया।

**विशेष**—रूपक, उपमा अलंकार।

**राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कवि-कोकिल हू की।**
**नामहिं ते गज की गनिका की, अजामिल की चलिगै चल चूकी॥**

**नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पाँडुबधू की।**
**ताको भलो अजहूँ 'तुलसी' जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दूकी ॥10॥**

**शब्दार्थ**—बिदाइ = त्याग कर। बिगरी = बिगड़ी। कवि-कोकिल = वाल्मीकी। पांडुबधू = द्रोपदी। प्रतीति = विश्वास। आखर = अक्षर। दूकी = दो की।

**व्याख्या**—राम नाम महिमा का बखान करते हुए तुलसी कहते हैं कि राम नाम का बड़ा प्रताप है, और तो और 'राम' नाम को त्याग कर उल्टा 'मरा' 'मरा' जपने से कवि वाल्मीकि की बिगड़ी बात बन गयी। राम नाम से ही गज और गणिका का उद्धार हो गया और अजामिल का धोखा भी चल गया, अर्थात् उसका भी भला हो गया। राम प्रताप से पी कुसमाज में अर्थात् दुष्ट दुर्योधन की सभा में द्रोपदी की लाज डंके की चोट रह गयी। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि जिसको 'राम' इन दो अक्षरों में प्रीति और विश्वास है उसका अब भी भला है।

**विशेष**—राम नाम महिमा का वर्णन किया गया है।

**भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितैहौं।**
**मोको न लेनो न देनो कछु कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं ॥**
**जानि कै जोरु करौं परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न मितैहौं।**
**ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि, हौ त्योंहीं तिहारे हिये पै हितैहौं ॥11॥**

**शब्दार्थ**—भागीरथी = गंगा। अरु = और। नितै = नित्य। मोको = मुझे कलि = कलियुग। रावरी = तुम्हारी। चितैहौं = देखना। जोरु = अत्याचार। मितैहौं डरूँगा। उरगारि = गरुड़।

**व्याख्या**—भक्त कितना सबल होता है। तुलसी कहते हैं कि मैं गंगाजल का पान करता हूँ और नित्य राम के दो नाम लेता हूँ। हे कालिकाल ! मुझे तुमसे कुछ भी लेना-देना नहीं है। परन्तु परवाह भी नहीं है, मैं भूलकर भी तुम्हारी ओर कभी नहीं देखूँगा। फिर भी यदि तुम जान-बूझकर मेरे साथ जोरजबरदस्ती, अत्याचार करोगे तो चैन नहीं पाओगे। परिणाम बुरा होगा और अन्त में पछताओगे। मैं तुमसे डरने वाला नहीं हूँ। जिस प्रकार गरुड़ ने ब्राह्मण को नहीं पचने के कारण वापस उगल दिया था, वैसे ही मैं भी तुम्हारे पेट में नहीं पच सकता। भाव यह है कि मैं तेरे वश में नहीं आ सकता।

**विशेष**—गरुड़ एक बार धोखे से एक ब्राह्मण को निगल गया। ब्रह्म हत्या के कारण पेट में जलन होने लगी। अन्त में उसे अपने पेट से निकालना पड़ा।

**पिंगल जटा कलापु, माथे पै पुनीत आपु,**
**पावक नैना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं।**
**लोचन बिसाल लाल, सोहे बालचन्द्र भाल,**
**कंठ कालकूट ब्याल भूषन धरत हैं ॥**
**सुन्दर बिगम्बर विभूति गात, भाँग खात,**
**रूरे सृंगी परे काल-कंटक हरत हैं ॥**

**देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,**
**भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं ।।12।।**

**शब्दार्थ** – पिंगल = पीला । कलापु = समूह । पावक = अग्नि । बरत = सुशोभित । लोचन = नेत्र । कालकूटु = विष । व्याल-भूषन = सर्पों के आभूषण । विभूति = भस्म । अटे = सुन्दर । सृंगी = सींग का बाघ । अघात = थकना । औढ़र = मनमौजी ।

**व्याख्या**—शिव महिमा गाता हुआ कवि कहता है कि शिव का जटाजूट पिंगल वर्ण का है, मस्तक पर पवित्र गंगा का जल सुशोभित है तथा नेत्रों में विद्यमान ज्योति भौंहों पर चमकती है । शंकर जी के नेत्र विशाल और लाल वर्ण के हैं, ललाट पर द्वितीया का चन्द्र शोभायमान है, गले में कालकूट विष व्याप्त है तथा सर्पों के आभूषण उन्होंने धारण कर रखे हैं । शिव का वेश, दिगम्बर है जो अति सुन्दर लगता है, शरीर पर भस्म रमायें रहते हैं, भाँग का सेवन करते हैं, मस्ती में सृंगी को बजाते हैं जिससे काल रूपी कण्ठक को निकाल देते हैं । जिस समय वे भोलानाथ योगी मौज में आकर प्रसन्न होते हैं तब वे भक्तों को वरदान देते-देते थकते नहीं हैं और स्वयं आक के पत्तों से सन्तुष्ट हो रीझते रहते हैं ।

**विशेष**—औढ़र शिव की महिमा व वेशभूषा का चित्रण ।

————

# रहीम

## दोहे

कहा करौं बैकुण्ठ लै, कल्पबृच्छ की छाँह ।
'रहिमन' ढाक सुहावनो, जो गल पीतम-बाँह ।। 1 ।।

**शब्दार्थ**—कहा = क्या । ढाक = वृक्ष विशेष ।

**व्याख्या**—संयोग सुख का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि यदि प्रिय पास में न हो तो स्वर्ग के कल्पवृक्ष की छाया में बैठकर भी क्या करूँगा, परन्तु यदि गले में प्रियतम की बाँह हो तो ढाक का वृक्ष भी सुहावना लगेगा । अर्थात् प्रिय मिलन में बल कष्ट सहनीय हैं ।

जे सुलगे ते बुझ गए, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
'रहिमन' दाहे प्रेम के, बुझि-बुझिकैं सुलगाहिं ।। 2 ।।

**शब्दार्थ**—दाहे = दग्ध होना ।

**व्याख्या**—प्रेमाग्नि का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि लकड़ी आदि जो जलनशील वस्तुएँ सुलग कर बुझ जाती है, शान्त हो जाती है, एक बार बुझ जाने पर पुनः नहीं सुलगती । परन्तु प्रेम की अग्नि में जो जल रहे होते हैं वे बुझ-बुझ कर भी फिर जलते रहते हैं । अर्थात प्रेम की आग कभी शांत नहीं होती ।

यह न 'रहिम' सराहिये, देन-लेन की प्रीति ।
प्रानन बाजी राखिये, हार होय के जीत ।।3।।

**शब्दार्थ**—सराहिये = प्रशंसा । प्रीति = प्रेम ।

**व्याख्या**—प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं, केवल आपस के लेन-देन का सम्बन्ध रखने वाले प्रेम की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए । प्रेम में तो अपने प्राणों की परवाह न कर प्राण भी दाँव में लगा देना चाहिए, फिर चाहें विजय मिले या हार ।

'रहिमन' मैन-तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माहिं ।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ।।4।।

**शब्दार्थ**—मैन = मोम । तुरंग = घोड़ा । पावक = अग्नि । निबहत = निबाहना ।

**व्याख्या**—रहीम प्रेम पंथ की कठोरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रेम के पंथ पर हर कोई नहीं चल सकता । प्रेम-मार्ग पर चलना उतना ही कठिन है, जितना मोम के घोड़े पर सवार होकर आग पर चलना ।

बहै प्रीति नहिं रीति बह, नहीं पाछिलो हेत ।
घटत-घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हे रेत ।।5।।

**शब्दार्थ**—कर = हाथ . रेत = मिट्टी ।

**व्याख्या**—रहीम प्रेम की रीति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मुट्ठी में ली हुई मिट्टी धीरे-धीरे खिसक कर गिर जाती है, उसी प्रकार प्रेम धीरे-धीरे कम होता चला जाय, यह प्रेम की रीति नहीं है। भाव यह है कि प्रेम में सम भाव चाहिए। उतार-चढ़ाव नहीं।

**जो 'रहिम' ओछो बढ़ै, तो अति ही इतराय।**
**प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय ।।6।।**

**शब्दार्थ**—ओछो = नीच। बढ़ै = उन्नति करता है। इतराय = घमंड करना।

**व्याख्या**—रहीम मानव प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ओछा व्यक्ति यदि विकास कर जाता है, उन्नति कर जाता है तो घमण्ड में बुरी तरह फूला फिरता है जैसे कि शतरंग के खेल में प्यादा फरजी बनने पर टेढ़ी चाल से चलने लग जाता है।

**'रहिमन' नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।**
**दूध कलारिन हाथ लखि, सब समुझहिं मद ताहि ।।7।।**

**शब्दार्थ**—लगत = लग जाता। कलारिन = शराब बेचने वाली। लखि = देखकर। मद = शराब। ताहि = उसे।

**व्याख्या**—रहीम कुसंगत का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नीच व्यक्तियों का संग करने से भला किस व्यक्ति को कलंक नहीं लगता ? जैसे शराब बेचने वाली के हाथ में दूध देखकर भी लोग उसे शराब ही समझते हैं, दूध नहीं।

**कौन बड़ाई जलधि मिली, गंग नाम भो धीम।**
**केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर-घर गये 'रहीम' ।।8।।**

**शब्दार्थ**—बड़ाई = बड़प्पन। जलधि = सागर। धीम = मंद। केहि की = किसकी।

**व्याख्या**—रहीम बड़प्पन के घटने के सम्बन्ध में कह रहे हैं कि संसार में ऐसा कौन है, जिसका दूसरे के घर जाने पर बड़प्पन न घटा हो। गंगा बहुत बड़ी और महिमाशाली नदी है, लेकिन समुद्र में जाने पर उसकी महिमा भी घट जाती है उसका नाम नहीं रहता अर्थात् सागर में मिलकर उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

**खरच बढ़्यो उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन।**
**कहु 'रहीम' कैसे जिए, थोरे जल की मीन ।।9।।**

**शब्दार्थ**—खरच = व्यय। नृपति = राजा। थोरे = कम। मीन = मछली।

**व्याख्या**—रहीम अत्यधिक व्यय बढ़ने की विषम परिस्थित का वर्णन करते हुए कहते हैं कि व्यय बढ़ गया और उद्यम घट गया अर्थात् आमद से ज्यादा खर्चा होने लगा है तथा राजा ने भी निष्ठुर मन कर लिया है अर्थात् सहायता नहीं कर रहे हैं। रहीम कहते हैं कि ऐसी स्थिति में जीवित रहना उसी प्रकार कठिन हो गया है जिस प्रकार थोड़े पानी में मछली का जीना कठिन हो जाता है।

**जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय ।**
**ताको बुरो न मानिये, लेन कहाँ सू ँ जाय ।।10।।**

**शब्दार्थ**—बनाय = बना कर । लैन = लेने ।

**व्याख्या**—रहीम अल्प बुद्धि व्यक्ति की प्रवृति के बारे में कहते हैं कि जिनकी जैसी बुद्धि होती है, वह वैसी ही बनाकर कहता है । अल्प बुद्धि वालों की बात का बुरा नहीं मानना चाहिए क्योंकि वे बुद्धि कहाँ से लेने जाय या उनसे लेना ही क्या है ।

**जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात ।**
**'रहिमन' असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात ।।11।।**

**व्याख्या**—रहीम बुरे दिनों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस अंचल की ओट में दिपक छिपाकर स्त्री पवन से उसकी रक्षा करती है, उसी अंचल को दीपक जला देता है । बुरे दिनों में इसी प्रकार मित्र भी शत्रु हो जाते हैं ।

**'रहिमन' अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर ।**
**बागन बिच-बिच देखिअत, सेंहुड़ कुंज करीर ।।12।।**

**व्याख्या**—विपत्ति के समय का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि वे पेड़ आज कहाँ जिनकी छाया बड़ी घनी होती थी । अब तो उन बागों में काँटेदार सेंहुड़ कंटीली झाड़ियाँ और करील देखने में आते हैं ।

**'रहीमन' तब लगि ठहरिए, दान, मान, सनमान ।**
**घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ।।13।।**

**शब्दार्थ**—लगि = तक । सनमान = सम्मान । तुरत = शीघ्र । पयान = प्रयाण, चलना ।

**व्याख्या**—व्यक्ति-सम्मान के बारे में रहीम कहते हैं कि व्यक्ति को किसी स्थान पर तब तक ही रहना चाहिए जब तक दान, मान और सम्मान रहे । जब सम्मान घटता हो तो वहाँ से तुरन्त चल देना चाहिए ।

**'रहिमन' खोटी आदि को, सो परिनाम लखाय ।**
**जैसे दीपक तम भखै, कज्जल बमन कराय ।।14।।**

**शब्दार्थ**—खोटी = बुरा । आदि = प्रारम्भ । परिनाम = परिणाम । तम = अंधकार । भखै = खाना । वमन = उगलना ।

**व्याख्या**—रहीम कह रहे हैं कि जिस कार्य का प्रारम्भ ही बुरा होता है उसका परिणाम भी बुरा निकलता है जैसे दीपक प्रारम्भ में अंधकार का भक्षण करता है तो अन्त में वह भी काजल ही छोड़ता है ।

**'रहिमन' रहिबो वह भलो, जौ लौं सील समूच ।**
**सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ।।15।।**

**शब्दार्थ**—भलो = उचित । सील = सम्मान आदि । समूच = पूरा । कूच = चलना ।

**व्याख्या**—मानव शील-सम्मान के बारे में रहीम कह रहे हैं कि उसी समय तक रहना उचित है जब तक कि पूरा शील-सम्मान बना रहे और जब शील-सम्मान में थोड़ी सी भी ढील आ जाय, आंच आए तो वहाँ से तुरन्त चल देना चाहिए ।

**धन थोरो, इज्जत बड़ी, कहि 'रहिम' का बात ।**
**जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँहि समात ॥16॥**

**शब्दार्थ**—थोरो = थोड़ा । वधू = बहू ।

**व्याख्या**—मानव इज्जत का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि यदि व्यक्ति के पास धन थोड़ा है लेकिन इज्जत है, तो क्या कहना । अर्थात् अच्छी बात है जैसे कुल की कुलवधू इज्जत वाली हो, कुल वाली हो तो वह फटे-पुराने कपड़ों में भी शोभा पाती है ।

**धनि 'रहीम' जल पंक को, लघु पिजिय पत अघाय ।**
**उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥17॥**

**शब्दार्थ**—धनि = धन्य । पंक = कीचड़ । लघु = छोटे । अघाय = सन्तुष्ट होना । उदधि = समुद्र । जगत = संसार ।

**व्याख्या**—जो सबके उपयोग में आये उसकी महिमा ही अलग है । रहीम कहते हैं कि कीचड़ का वह पानी धन्य है जिससे छोटे छोटे जीव पेट भर पानी पीकर सन्तुष्ट होते हैं । समुद्र की क्या बड़ाई करें, जहाँ से सारा संसार प्यासा ही लौट आता है ।

**अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि ।**
**है 'रहीम' रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥18॥**

**शब्दार्थ**—जयपि = यद्यपि । रघुनाथ = राम । ते = से । बाढ़ी = बढ़कर ।

**व्याख्या**—अनुचित का कभी भी पालन न करने के बारे में रहीम कहते हैं कि अनुचित बात को कभी स्वीकार नहीं करनी चाहिए, चाहे वह गुरु द्वारा दी हुई आज्ञा ही हो । राम ने पिता वचन का पालन कर वन-गमन किया, लेकिन छोटे भाई भरत ने गुरुजन की आज्ञा न मानकर राज्य ग्रहण नहीं किया । भरत का यह त्याग राम के त्याग से बढ़कर है ।

**अब 'रहीम' मुसकिल पड़ो, गाढ़े दोऊ काम ।**
**साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥19॥**

**व्याख्या**—रहीम सत्य पालन के बारे में कहते हैं कि अब मेरे लिए बड़ी विकट परिस्थिति हो गई है, क्योंकि दोनों ही काम कठिन है—यदि मैं सत्य पर चलता हूँ तो जगत में जीना कठिन है और असत्य का सहारा लेता हूँ तो राम की प्राप्ति कठिन है ।

**आदर घटै नरेस ढिग, बसे रहै कछु नाहिं ।**
**जो 'रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहिं ।।20।।**

**शब्दार्थ**—नरेश = राजा । दिग = पास । कोटिन = अनेक बार । धिक = धिक्कार ।

**व्याख्या**—सम्मान रक्षार्थ रहीम कहते हैं कि राजा के पास चलकर जाने से आदर घटता है, वैसे राजा के पास रहे तो कुछ नहीं है । परन्तु अनेक बार मिलने से (बार-बार) अपना अपमान करना हो तो निश्चय ही धिक्कार के योग्य है ।

**आप न काहू काम के, डार पात फल फूल ।**
**औरन को रोकत फिरैं, 'रहिमन' पेड़ बबूल ।।21।।**

**शब्दार्थ**—आप = स्वयं । डार = डाल । औरत = दूसरों को । बबूल = बबूल ।

**व्याख्या**—वह किस काम का जो न तो दूसरों की भलाई कर सके और न अपने स्वयं के काम आये । रहीम कहते हैं कि बबूल न स्वयं के काम आये और न ही उसकी डाल, पत्ते, फल और फूल ही दूसरों के काम आये । वह तो रास्ते में फैल कर दूसरों को आने जाने से और रोकता है, ऐसा पेड़ है बबूल का ।

**एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।**
**'रहिमन' मूलहि सींचिबो, फूलहिं फलहिं अघाय ।।22।।**

**शब्दार्थ**—साधै = साधने से । मूल = जड़ ।

**व्याख्या**—लक्ष्य प्राप्ति हेतु मुख्य को पकड़ने के बारे में रहीम कहते हैं कि एक को साधने से सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं और अगर सबको अलग-अलग साधने लगेंगे तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होगा। पेड़ की जड़ को सींचने से सारा वृक्ष फूलने-फलने लगता है । अर्थात मुख्य जड़ को पकड़ने से सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।

**अन्तर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोय ।**
**कै जिय जाने आपनो, जा सिर बीती होय ।।23।।**

**शब्दार्थ**—अन्तर = हृदय में । बीति = व्यतीत होय ।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि जिसके हृदय में दुःखी की, विपत्तियों की अग्नि जलती रहती है परन्तु बाहर धुँआ भी दिखाई नहीं देता है, अर्थात किसी को अपनी व्यथा नहीं कहते । इसको तो वही जानता है, जिनके सिर पर विपत्ति आई हो ।

**कदली, सीप, भुजंग, मुख, स्वाति एक गुन तीन ।**
**जैसी संगति बैठिए, तैसोउ फल दीन ।।24।।**

**शब्दार्थ**—कदली = केले के पत्ते । भुजंग = सर्प । स्वाँति = नक्षत्र विशेष ।

**व्याख्या**—संगति का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि स्वाति नक्षत्र का पानी तो एक ही होता है, परन्तु तीनों स्थानों पर अपने तीन गुण प्रकट करता है—केले के पत्ते पर कपूर, सीप के मुख में विष और सीप के मुख में पड़ने से मोती

बनता है। सच भी है जो जैसी संगति में बैठता है वैसा ही फल प्राप्त करता है ।

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों बैर ।
'रहिमन' बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर ॥25॥

**शब्दार्थ**—निबदे = निभना । निबल = कमज़ोर ।

**व्याख्या**—अपने से सबल से वैर न करने के सन्दर्भ में रहिम कहते हैं कि कमजोर व्यक्ति अगर शक्तिशाली से बैर रखे तो कैसे निभ सकता है.? सागर में रह कर दुर्दान्त मगर से बैर नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका परिणाम मरण ही हो सकता है ।

कोउ 'रहिम' जानि काहुके, द्वार गये पछिताय ।
संपति के सब जगत हैं, बिपति सबै ले जाय ॥26॥

**शब्दार्थ** – संपति = धनवान । पछिताय = पछताना ।

**व्याख्या**—विपत्ति में मान भी नहीं रहता है । रहीम कहते हैं कि विपत्ति में किसी के द्वार पर जाने का पछतावा नहीं करना चाहिए क्योंकि धनवान के पास तो सभी आते हैं और विपत्ति कहाँ नहीं ले जाती विपत्ति में तो मानव को भटकना ही पड़ता है ।

खैर, खून, खाँसी, खुशी, बैर, प्रीति, मद-पान ।
'रहिमन' दाबे ना दबै, जानत सकल जहान ॥27॥

**शब्दार्थ**—खैर = कुशलता । खून = रक्त । मद = शराब । दाबे = छिपाये । जहान = संसार ।

**व्याख्या**—मन के भावादि को छिपा नहीं सकते । रहीम कहते हैं कि कुशलता रक्त, खाँसी, प्रसन्नता, शत्रुता, प्रेम और शराब का पीना छिपाने पर भी नहीं छिप सकते, प्रकट हो ही जाते हैं और सभी लोग जान भी लेते हैं ।

जे 'रहिम' विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥28॥

**शब्दार्थ** – विधि = विधाता । बड़ = बड़ा बनाया । दूषन = दोष । दूबरो = दुर्बल । कूबरो = टेड़ा । नखत = तारे । बाढ़ि = बढ़कर ।

**व्याख्या**—बड़े लोगों में कोई दोष नहीं देखता । रहीम कह रहे हैं कि विधाता ने जिनको बड़ा बनाया है उनके चरित्र-दोष कौन कह सकता है, चन्द्रमा दुबला और टेढ़ा-मेढ़ा उदय होने पर भी तारों से अधिक सम्यानित है ।

जैसी परै सो सहि रहे, काहि 'रहिम' यह देह ।
धरती ही पर परत है, शीत, घाम औ, मेह ॥29॥

**शब्दार्थ**—परै = पड़ती है । सहि = सहन करना । सीत = शीत । घाम = धूप । मेह = वर्षा ।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि सुख-दुःख में मानव को समभाव से रहना चाहिए। जैसी भी इस तन पर विपदा पड़ती है, सहन करनी चाहिए क्योंकि इस पृथ्वी पर ही शीत, धूप और वर्षा पड़ती है, अर्थात वह विपत्ति को सहन करती है, वैसे ही मानव को भी सहन करना चाहिए।

**जो घर ही में घुसि रहे, कदली सुपत सुडील।**
**तो 'रहिम' तिनते भले, पथ के अपत करील ।।30।।**

**शब्दार्थ**—कदली = केले का पेड़। सुपत = सुन्दर पत्ते। सुडील = सुडौल। करील = पेड़।

**व्याख्या**—जीवन किसी के हित में काम न आवे तो वह व्यर्थ है। रहीम कहते हैं कि सुन्दर पत्तों वाले और सुडौल केले के पेड़ हैं, सदैव घर में ही सुशोभित होते हैं, वे किस काम के। इससे अच्छा तो वह करील का बिना पत्तों का पेड़ ही है जो रास्ते पर खड़ा रहता है। कुछ तो काम आता है।

**जो बड़ेन को लघु कहै, नहीं 'रहिम' घटि जाहिं।**
**गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ।।31।।**

**शब्दार्थ**—लघु = छोटा। घटि = कम होना।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि छोटे नाम से बड़प्पन कम नहीं होता। जैसे गिरधर को (गिरी को धारण करने वाले) मुरलीधर (मुरली धारण करने वाले) कहने से कृष्ण की महिमा में कमी नहीं होगी।

**जो 'रहिम' गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।**
**बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ।।32।।**

**शब्दार्थ**—गति = स्थिति। बारे = जलाने पर, बालक रूप में। बढ़े = बुझा देने पर, बड़ा होने पर।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि कपूत की स्थिति दीपक के समान होती है। जैसे दीपक जलने पर प्रकाश देता है वैसे ही कपूत बालक होने पर सुख देता है परन्तु दीपक बुझ जाने पर और कपूत के बड़े हो जाने पर दुख ही होता है। अन्धकाररूपी दुःख छा जाता है।

**जो 'रहिम' मन हाथ है, तो तन कहु किन जाहिं।**
**जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं ।।33।।**

**शब्दार्थ**—हाथ है = वश में है। परे = पड़ती है। काया = शरीर।

**व्याख्या**—मन को वश में करने के संदर्भ में रहीम कहते हैं कि यदि शरीर पास में है, वश में है तो कोई चिन्ता की बात नहीं है, मन तो चलायमान है, कहीं भी जा सकता है। इससे शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे जल में शरीर की छाया पड़ती है परन्तु उससे शरीर भीगता नहीं है।

**जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात ।**
**ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ।।34।।**

**शब्दार्थ** – विषयं = विषय वासना । तजि = त्याग दी । मूढ़ = मूर्ख । वमन = उल्टी । स्वान = कुत्ता ।

**व्याख्या** – विषय वासनाओं से हर कोई मुक्ति नहीं पा सकता । रहीम कहते हैं कि संत मनुष्य ने जिन विषय-वासनाओं को बुरा मानकर त्याग कर दिया उन्हीं को मूर्ख बड़े प्रेम से अपनाता है । जैसे मनुष्य वमन कर त्याग देता है, कुत्ता उसे बड़े ही स्वाद से ग्रहण करता है ।

**तबही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम ।**
**जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय 'रहीम' ।।35।।**

**शब्दार्थ** – लौं = तक । दीबो = देना, दान । धीम = कम । कुचित = अनुचित ।

**व्याख्या** – दान शक्ति का वर्णन करते हुए रहीम कहते हैं कि जीवित रहना तभी तक अच्छा है जब तक दान देने की शक्ति कम न हो । अगर ऐसा सम्भव न हो तो अनुचित रीति से संसार में रहना ठीक नहीं है ।

**थोथे बादर क्वार के, ज्यों 'रहीम' घहरात ।**
**धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात ।।36।।**

**शब्दार्थ** – थोथे = खाली । बादर = बादल । घहरात = घुमड़ते है । भय = होने पर ।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि क्वार मास के खाली बादल जिस प्रकार से घुमड़ते हैं, उसी प्रकार धनी मनुष्य निर्धन होने पर अपने पिछले दिनों की ही बातें करते रहते हैं । भाव यह है कि अतीत की स्मृति सुखद होती है । अभावग्रस्त व्यक्ति कुछ कर तो सकता नहीं । बातें जरूर बनाता रहेगा ।

**दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखे न कोय ।**
**जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय ।।37।।**

**शब्दार्थ**—दीन = गरीब । लखत = देखता है । कोय = कोई । दीनबन्धु = भगवान । सम = समान ।

**व्याख्या** – रहीम कहते हैं कि गरीब व्यक्ति सबकी ओर देखता है, लेकिन उनकी ओर कोई नहीं देखता अर्थात् कोई सहायता नहीं करता । जो गरीबों का ध्यान करते है । दुःख सुख में सहायता करते हैं, वे मनुष्य भगवान के समान होते हैं ।

**दोनों 'रहिमन' एक से, जो लौं बोलत नाहि ।**
**जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहि ।।38।।**

**शब्दार्थ**—जौ लौं = जब तक । परत = पड़ता है । काक = कौआ । पिक = कोयल ।

**व्याख्या**—रहीम कहते हैं कि वाणी से ही भले-बुरे का पता चलता है। कौआ और कोयल जब तक बोलते नहीं दोनों एक समान नजर आते हैं। बसंत ऋतु के आगमन पर ज्यों ही इनकी वाणी मुखरित होती है, इनका पता चल जाता है।

**माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।**
**माँगत आगे सुख लह्यो, तै 'रहीम' रघुनाथ ॥39॥**

**शब्दार्थ**—मुकरि = मुकरना। रघुनाथ = राम।

**व्याख्या**—कुछ देने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। रहीम कहते हैं कि संसार में ऐसा कौन सा मनुष्य है, जो माँगने पर मुकर न गया हो। माँगने पर साथ न छोड़ दिया हो। भाव यह है कि मित्रादि से सहायता माँगने पर साथ ही छोड़ देते हैं किन्तु भगवान राम से माँगने पर तो सुख ही मिलता है। अर्थात् राम से माँगने पर निराशा नहीं मिलती है। जरूर सहायता मिलती है।

**यह 'रहीम' माने नहीं, दिल से नवा न कोय।**
**चीता, चोर, कमान के, नवे ते अवगुन होय ॥40॥**

**शब्दार्थ**—नवा = नम्र। अवगुन = अवगुण।

**व्याख्या**—दुष्ट व्यक्ति के व्यवहार का चित्रण करते हुए रहीम कहते हैं कि चीता, चोर और कमान नम्र होने (झुकने) पर दिल से नम्र नहीं होता है क्योंकि जब चीता नम्र दिल होकर झुकता है तो आक्रमण के लिए उछलता है, चोर नम्र होकर धन-हानि करता है, और कमान से भी झुकने पर तीर फेंका जाता है। अतः इन तीनों का नम्र होना, झुकना हानि कारक होता है।

**'रहीमन' विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।**
**हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥41॥**

**शब्दार्थ**—विपदा = आपत्ति। भली = अच्छी। थोरे = थोड़े। जानि = जाना जा सकता है।

**व्याख्या**—आपत्ति सुखदायी भी होती है। रहीम कहते हैं कि यदि आपत्ति कुछ समय के लिए हो तो वह भी अच्छी है क्योंकि आपति काल में ही सबके विषय में पता लग जाता है कि संसार में कौन हितैषी है और कौन हितैषी नहीं है। विपत्ति मानव चरित्र की कसौटी है।

**'रहीमन' सुधि सबसे भली, लगै जो बारम्बार।**
**बिछुरे मानुष फिर मिलै, यहै जान अवतार ॥42॥**

**शब्दार्थ**—सुधि = याद आना। बिछुरे = बिछुड़े हुए। फिर = पुनः।

**व्याख्या**—स्मरण का महत्व बताते हुए रहीम कहते हैं कि याद अगर बार-बार आती है तो वह सबसे अच्छी बात है। क्योंकि याद करने से ही बिछुड़े हुए मनुष्य पुनः मिल जाते हैं। इस मिलन को ही अवतार समझना चाहिए।

**रूप, कथा, पद चारुपद, कंचन, दोहा, लाल।**
**ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल 'रहीम' बिसाल ॥43॥**

**शब्दार्थ**—चारु = सुन्दर । पद = वस्त्र । कंचन = स्वर्ण । लाल = माणिक्य । बिसाल = वास्तविक, बहुत । निरखति = देखते हैं ।

**व्याख्या**—सूक्ष्म निरीक्षण का महत्व बताते हुए रहीम कहते हैं कि रूप, कथा, पद, सुन्दरता, स्वर्ण, दोहा और माणिक्य—इनको जितना सूक्ष्म दृष्टि से, ध्यान से देखेंगे, उतना ही इनका मूल्य बढ़ता है, महत्व समझ में आवेगा । उड़ती निगाह से देखने पर कुछ भी हाथ नहीं आयेगा ।

**बरु 'रहीम' कानन भलो, बास करिय फल भोग ।**
**बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ।।44।।**

**शब्दार्थ**—कानन = वन । वरु = भले । धन-हीन = गरीब । बसिवो = निवास करना ।

**व्याख्या**—धनहीन व्यक्ति का महत्व कम होता है । रहीम कहते हैं कि बन्धु-बन्धवों के बीच में निर्धन होकर रहना उचित नहीं है । क्योंकि बराबरी न होने के कारण, मानसिक दबाव रहता है । इससे तो वन में निवास करना और फलों का भोजन करना ही अच्छा है अर्थात् धन-हीन से तो एकाकी जीवन व्यतीत करना ही उचित है ।

---

# बरवै

**बढ़त जात चित दिन-दिन, चौगुन चाव ।**
**मनमोहन तें मिलबौं, सखि कहँ दाँव ।।1।।**

**शब्दार्थ**—चाव इच्छा, अभिलाषा । दाँव = अवसर ।

**व्याख्या**—प्रिय मिलन हेतु सखि अपनी सखि से कह रही है कि हे सखी ! चित में अभिलाषा दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ रही है । मनमोहन से मिलन का अवसर (अपने भाग्य में) कहाँ ?

**मनमोहन बिन देखे, दिन न सुहाय ।**
**गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय ।।2।।**

**शब्दार्थ**—सुहाय = अच्छा लगना । गुन = गुण । मिलाय = मिलन ।

**व्याख्या**—एक सखि दूसरी सखि से कह रही है कि कृष्ण को देखे बिना, उनके अभाव में दिन भी अच्छा नहीं लगता है । पूर्व में उनसे जो थोड़ा मिलन हुआ था, मैं उनके गुणों को नहीं भूल सकती ।

**समुझति सुमुखि सयानी, बादर झूम ।**
**बिरहिन के हिय भभकत, तिनकी घूम ।।3।।**

**शब्दार्थ**—सुमुखि=सुन्दर मुख वाली। बादर=बादल। हिय=हृदय। धम=धुआँ।

**व्याख्या**—विरहदग्धा नायिका का चित्रण करते हुए रहीम कहते हैं कि चतुर सुन्दर मुख वाली नायिका ने समझा कि बादल झूम कर छाये हैं, परन्तु यह तो विरहिणी का हृदय है जो भभक कर जल रहा है, उसका धुँआ है।

**डोलत त्रिविध मरुतवा, सुखद सुढार।**
**हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ।।4।।**

**शब्दार्थ** – मरुतवा=पवन। सुढार=सुन्दर। जिमि= जैसे।

**व्याख्या**—एक सखी दूसरी से कह रही है कि सुखद पवन तीन प्रकार से शीतल-मन्द-सुगन्ध, आनन्द लेने वाला है परन्तु कृष्ण प्रियतम के बिना यह तलवार के सम्मान काटने वाला लगता है।

**कहियो पथिक संदेसवा, गहि के पाय।**
**मोहन तुम बिन तनिकहु, रह्यौ न जाय ।।5।।**

**शब्दार्थ**—पथिक=राहगीर। गहि=पकड़कर। पाय=पैर।

**व्याख्या**—विरहणी पथिक के हाथ संदेश भेजती हुई कर रही है कि पथिक कृष्ण के पाँव पकड़कर विनय पूर्वक यह संदेश देना कि 'हे कृष्ण तुम्हारे बिना उससे थोड़ी सी देर भी नहीं रहा जाता।' अतः जल्दी आकर मिलो।

**जबते आयौ सजनी, मास असाढ़।**
**जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ।।6।।**

**शब्दार्थ**—गाढ़=पीड़ा। तिय=स्त्री।

**व्याख्या**—विरहदग्ध नायिका के हृदय की पीड़ा आषाढ़ के आने पर और बढ़ जाती है उसी का चित्रण करते हुए रहीम कहते हैं कि हे सजनी! जब से आषाढ़ का महिना आया है, तब उस विरहणी स्त्री के हृदय की पीड़ा समझ में आई है। अर्थात् आषाढ़ अधिक कष्टदायी हो रहा है और प्रिय को सच्चे मन से चाहने वाली है।

**जदपि बसत हैं सजनी, लाखन लोग।**
**हरि बिन कित यह चित को, सुख संजोग ।।7।।**

**व्याख्या**—कृष्ण से अनन्य प्रेम का चित्रण करती हुई नायिका कह रही है कि हे सखि यद्यपि यहाँ लाखों लोग निवास करते हैं परन्तु कृष्ण के बिना सयोग सुख कौन दे सकता है।

**देखन ही को निसदिन, तरफत देह।**
**यहाँ होत मधुसूदन, पूरन नेह ? ।।8।।**

**शब्दार्थ**—देखन=दर्शन। निस दिन=रात दिन। तरफत=तड़फना। नेह–प्रेम।

**व्याख्या**—विरह में नायिका कृष्ण की चाह करती हुई कह रही है कि हे कृष्ण ! तुम्हारे दर्शन हेतु ही मेरी देह रात-दिन तड़फती है, पूर्ण प्रेम की यही पहचान है ।

**हौं लखिहौ री सजनी, चौथ मंयक ।**
**देखौं केहि विधि हरि सों, लगत कलंक ।।9।।**

**शब्दार्थ**—लखिहौ = देखा । मयंक = चन्द्रमा ।

**व्याख्या**—प्रेमिका सखी से कह रही है कि हे सखी ! मैंने चौथ का अनिष्ठ कारक चन्द्रमा देखा है, अब देखना है कि किस विधि से कृष्ण को (प्रेम का) कलंक लगता है ।

**इन बातन कछु होत न, कहो हजार ।**
**सबही पै हँसि बोलत, नन्दकुमार ।।10।।**

**व्याख्या**—नायिका कृष्ण के चरित्र के गुणों के बारे में कह रही है कि कृष्ण के साथ किसी के प्रेमादि की इन हजार-हजार बातों के कहने से कुछ नहीं होने का । वे कृष्ण तो सबसे ही हंसकर बात करते हैं ।

**कहा छलत तो ऊधौं, दै परतीति ।**
सपनेहू नहिं **बिसरै** मोहनि-मीति ।।**11**।।

**शब्दार्थ**—परतीति = विश्वास । बिसरै = भूलना । छलत = धोखा देना । मीति – मित्रता ।

**व्याख्या**—गोपी उद्धव से कह रही है कि हे उद्धव ! निर्गुण ब्रह्म के प्रेम का विश्वास दे, हमको क्या छल रहे हो । हम कृष्ण की मित्रता को (प्रेम को) स्वप्न में भी नहीं भूल सकती ।

**घेर रह्यौ दिन रतियां, बिरह बलाय ।**
**मोहन की वह बतियां, ऊधो हा ! ।।12।।**

**शब्दार्थ**—बलाय = दुःख । बतियां = प्रेम रस की बातें ।

**व्याख्या**— हे उद्धव ! कृष्ण वियोग में विरह दुःख हमें रात दिन घेरे रहता है । संयोग सुख में कृष्ण की वे प्रेम रस पूर्ण बातें स्मरण हो आती है । परन्तु अब विवश हैं । हाय ! क्या करें ।

**ज्यों चौरासी लख में, मानुष देह ।**
**त्योंही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ।।13।।**

**व्याख्या**—प्रेम की दुर्बलता का वर्णन करती हुई नायिका कह रही है कि, हे सखि !—जैसे चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि बड़ी मुश्किल से मिलती है वैसे ही इस संसार में सहज प्रेम की दुर्लभ है ।

**मानुष तन अति दुर्लभ,सहजहिं पाय ।**
**हरि-भजि कर सत संगति, कह्यौ जताय ।।14।।**

**व्याख्या**—मानुष जन्म की उपयोगिता हेतु रहीम कहते हैं कि मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है, जो हमें सहज ही मिल गया है, इसे यूँ ही नहीं बीता देना चाहिए। भगवान का भजन कर, सज्जनों की संगति कर व्यतीत करना चाहिए।

**अति अद्‌भुत छवि-सागर, मोहन-गात।**
**देखत ही सखि बूड़त, दृग-जलजात ।।15।।**

**व्याख्या**—संयोग सुख का वर्णन करती हुई नायिका कह रही है कि हे सखी! कृष्ण के शरीर के अद्‌भुत शोभा रूपी सागर में देखते ही आँखे रूपी कमल डूब जाते हैं। भाव यह कि कृष्ण मिलन में आतुर आंखें उनका दर्शन करते ही जल मग्न हो जाती है।

**बिन देखें कल नाहिन, यह अंखियाँन।**
**पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ।।16।।**

**शब्दार्थ**—कल = चैन। कलप = कल्प।

**व्याख्या**—प्रिय वियोग में नायिका कह रही है कि हे सखी! इन आँखों को कृष्ण को देखे बिन चैन कहाँ? एक-एक पल एक-एक कल्प के समान व्यतीत हो रहा है। अर्थात् कृष्ण इन्तजार में अवधि काटे नहीं कटती है।

**जब तब मोहन झूठी, सौंहें खात।**
**इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ।।17।।**

**व्याख्या**—मिलन की आतुर गोपी कह रही है कि कृष्ण मिलने के लिए आने की जब तब यूँ ही झूठी सोगन्ध खाते रहते हैं। इन बातों से ही पता चलता है कि वे चतुर कहे जाते हैं अर्थात् चतुर हैं।

**मोहि मीत बिन देखें, छिन न सुहात।**
**पल पल भरि भरि उझलत, दृग जलजात ।।18।।**

**शब्दार्थ**—मीत = प्रेमी। छिन = क्षण। उझलत = उमड़ना। जलजात = कमल।

**व्याख्या**—कृष्ण प्रेम में पड़ी गोपी कह रही है कि मेरे को बिना कृष्ण को देखे एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता। उनके वियोग में आँखें रूपी कमल पल-पल में उमड़ आती है। अर्थात् कृष्ण की याद आते ही आँसू आ जाते हैं।

**जल तें बिछरे मितवा, कहु कस चैन।**
**रहत भर्‌यौ हिय साँसन, आँसुन नैन ।।19।।**

**शब्दार्थ**—कस चैन = कैसे सुख मिले। हिय = हृदय। नैन = नेत्र।

**व्याख्या**—विरहिणी गोपी कहती है कि जब से प्रेमी कृष्ण बिछुड़ हैं, चैन कहाँ! वियोग में हृदय निःश्वासों से और नेत्र आँसुओं से भरे रहते हैं। मेरी स्थिति बड़ी खराब है।

**कैसे जावत कोऊ, दूरि बसाय।**
**पल अन्तरहू सजनी, रहयो न जाय ।।20।।**

**व्याख्या**—कृष्ण से मिलने में नायिका कह रही है कि हे सखी ! प्रियतम बहुत दूर जाकर बस गये हैं, वहाँ कोई कैसे जाये। उनके वगैर एक पल भी नहीं रहा जा सकता। भाव यह है कि न संदेश भेजा जा सकता है न जाया जा सकता है अतः चैन नहीं।

**गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक।**
**तबते लगनि अगनि की उठत भबूक ।।21।।**

**शब्दार्थ**—हेरि = देखना। हरि = कृष्ण। बिहँसि = हँसकर। लगनि = स्नेह। भबूक = भड़कना।

**व्याख्या**—हे सखी ! जब कृष्ण बिछुड़े तब मेरी ओर देखकर कुछ मुस्करा कर चल दिये, तब से मेरे हृदय में स्नेह आग जल उठी और समय पाकर भड़क उठती है। भाव यह कि जब से कृष्ण बिछुड़े हैं तब से प्रेम की प्रगाढ़ता हो गई है।

**जबते मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहि।**
**रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माँहि ।।22।।**

**शब्दार्थ**—सुधि = होश।

**व्याख्या**—हे सखी ! जब से कृष्ण बिछुड़े हैं, तब से मुझे किसी की सुध नहीं है, बावली सी हो गई हूं। वियोग में मेरे प्राण, पलकों के माध्यम से आँखों के रास्ते में आ गये हैं। भाव यह है कि कृष्ण वियोग में पलकें नहीं लगती। प्राण निकलने की स्थिति में हैं।

**उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार।**
**जब ते बिछुरे सजनी, नन्दकुमार ।।23।।**

**शब्दार्थ**—उझकि = उभड़ना, उचटना। हेरत = देखना।

**व्याख्या**—कृष्ण वियोग में नायिका कह रही है कि, हे सखी ! जब से कृष्ण बिछुड़ कर गये हैं, मेरा चित उचटा-उचटा रहता है, दिन-दिन ऐसा ही हाल हो रहा है। और इन्तजार में द्वार को देखती रहती हूं।

**चतुर वया करि मिलिहौ, तुरतहि आय।**
**बिन देखे निस बासर, तरफत जाय ।।24।।**

**शब्दार्थ**—तुरत = शीघ्र। निस = रात्रि। बासर = दिन।

**व्याख्या**—विरहिणी निवेदन कर रही है कि हे चतुर प्रियतम ! तुम तुरन्त आकर मिलो। तुम को देखे बिना रात-दिन मेरे प्राण तड़फते रहते हैं।

**तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।**
**होरी से त्योहारन, पीहर जात ।।25।।**

**व्याख्या**—कृष्ण के न आने पर नायिका संदेश भेजती है कि हे कृष्ण ! तुम सब प्रकार से चतुर हो, यह मेरे लियें अच्छी बात है। मैं होली के त्यौहार से पीहर जाऊँगी। अतः तुम लौट आओगे मुझे यह आशा है।

**जब तें बिछुरे मोहन, भूख न प्यास।**
**बेरि बेरि बढ़ि आवत बड़े उसास ॥26॥**

**व्याख्या**—हे मनमोहन ! जब से तुम बिछुड़कर गये हो, तब हो न भूख लगती है और न ही प्यास। जी बड़ा विकल है। सांस समय-समय से उठकर आती है अर्थात् मरणासन्न की स्थिति हो रही है।

**अन्तरगत हिय बेधत, छेदत प्रान।**
**विष सम परम सबन तें, लोचन बान ॥27॥**

**शब्दार्थ**—अन्तरगत=हृदय के अन्दर तक। हिय=हृदय। विष=जहर। बान=बाण।

**व्याख्या**—कृष्ण प्रेम में अनुरक्त गोपी कह रही है कि मैं कृष्ण के नेत्र रूपी बाण से घायल हो गई हूं, वे लोचन-बाण हृदय की गहराई तक जाकर प्राणों को बेध डालते हैं, इनका प्रभाव विष के समान सबसे बढ़कर होता है। भाव यह कि गोपी कृष्ण के नेत्रों की सुन्दरता के वशीभूत हो गई।

**उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।**
**ऊधो तुमहु कहियो, धनि बृजराज ॥28॥**

**शब्दार्थ**—निबाहै=निभाना। धनि=धन्य। बृजराज=कृष्ण।

**व्याख्या**—हे उद्धव ! बृजराज कृष्ण धन्य हैं जिन्होंने हित भावना से हमारी लाज रखी। तुम ही कहो, उनके बिना हमारे (प्रेम) को कौन निभा सकता है। भाव यह कि कृष्ण गोपियों के सब प्रकार से हितैषी हैं।

**जिहिके लिये जगत में, बजै निसान।**
**तिहि-ते करे अबोलन, कौन सयान ॥29॥**

**शब्दार्थ**—निसान=नगाड़े। सयान=चतुर।

**व्याख्या**—विरह विकल गोपी कह रही है जिस प्रियतम कृष्ण के लिये आनन्द में नगाड़े बजाये जाते हैं, आज उन्हीं से अबोलन है, बात तक नहीं कर सकते यह कैसी चतुराई है।

**लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।**
**लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥30॥**

**शब्दार्थ**—बंसी=बंशी। वंसी=मछली पकड़ने का काँटा। जान—समान। बंशी में बड़ी करामात है। जब पहली बार उसे देखते हैं, सुनते हैं बड़ी मधुर लगती है परन्तु बाद में वह हमें उसी प्रकार वश में कर लेती है जैसे मछली को

मछली पकड़ने का काँटा बस में कर कर लेता है और हमारे प्राणों को बेध डालती है।

**कहा कान्ह ते कहनों, सब जग साखि।**
**कौन होत काहू के, कुबरी राखि ।।31।।**

**शब्दार्थ** – साखि = साक्षी। कुबरी = कब्जा।

**व्याख्या** – सौतिया डाह से दुःखी गोपी कह रही है कि हम कृष्ण से प्रेम करती हैं, इस बात को कृष्ण से क्या कहना है। इस दुनियाँ में कौन किसका होता है ? प्रेमी कृष्ण ने अपने पास कुब्जा को रखकर हमें छोड़ दिया है।

---

# मीराँ बाई

## पदावली

**हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।**
**मोर मुकुट माथे तिलक विराजे, कुण्डल अलकाकारी को।**
**अधर मधुर पर बंशी बजावें, रीझ रिझावें राधाप्यारी को।**
**यह छवि देख मगन भई मीरां, मोहन गिरवरधारी को ।।1।।**

**शब्दार्थ** – बाँके बिहारी = कृष्ण। विराजे = शोभित। अलक = केश। अधर = ओठ। छवि = शोभा।

**व्याख्या**—कृष्ण-रूप छवि का वर्णन करती हुई मीरां कह रही है कि हे बाँके बिहारी कृष्ण जी ! मेरा प्रणाम स्वीकार हो। कैसी शोभा है आपकी छवि की। मस्तक पर मोर मुकुट तथा तिलक सुशोभित है। कानों में सुन्दर कुण्डल एवं उनके चारों ओर श्यामल केशराशि लहराती हुई अत्यन्त सुन्दर लगती है। हे कृष्ण आप जब अपने मधुर अधरों पर अपनी प्रिय बंशी रखकर रीझते हुए बजाते हो, तब प्रिय राधा को भी अपनी मधुर बंशी की लहरी पर रिझा लेते हो। हे गिरधर लाल ! तुम्हारी मोहिनी छवि को देख मीरां मोहित हो गई है।

**विशेष**—(1) कृष्ण छवि का वर्णन किया गया है।

(2) कृष्ण की मधुर छवि पर मीराँ न्योछावर है।

**बसो मोरे नैनन में नंदलाल।**
**मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।**
**अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।**
**छुद्रघंटिका कटि तट सोभित, नूपूर सबद रसाल।**
**मीरां प्रभु संतन सुखदायी, भक्त बछल गोपाल ।।2।।**

**शब्दार्थ**—मोरे = मेरे । नंदलाल = कृष्ण । राजपति = शोभित है । रसाल = सुन्दर । बछल = प्रिय । छुद्रघंटिका = छोटी घण्टियाँ । नुपूर = पायजैब ।

**व्याख्या**—कृष्ण-रूप छवि का वर्णन करती हुई मीराँ कहती है कि हे नंद-नंदन कृष्ण । आप मेरे नेत्रों में निवास करो । अर्थात् आपकी सुन्दर मूर्ति मेरी आंखों में बसी रहे । आपकी मूर्ति मन-मोहिनी एवं सूरत साँवली-सुन्दर है । आपके नेत्र विशाल व सुन्दर है । आपके ओठों पर अमृत बरसाने वाली मुरली शोभित है और वक्ष पर वैजयन्ती माला बड़ी ही सुन्दर लगती है । आपकी कमर में छोटे-छोटे घुँघरों वाली करधनी और पैरो में मधुर ध्वनि करने वाले नुपूर सुशोभित हैं । मीराँ कहती है कि हे प्रभु ! आप सदा ही सन्तों को सुख देने वाले हैं । हे गोपाल ! आप परम भक्त वत्सल हैं ।

**विशेष**—कृष्ण छवि का सुन्दर वर्णन किया है ।

**तनक हरि चितवौजी मोरी ओर ।**
**हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर ।**
**मेरे आसा चितवनी तुमरी, और न दूजी दोर ।**
**तुमसे हमकूँ कब रु मिलोगे, हमसी लाख करोर ।**
**ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर ।**
**मीराँ के प्रभु हरि अनिवासी, देस्यूँ प्राण अकोर ॥3॥**

**शब्दार्थ**—चितवो = देखो । दोर = स्थान । ऊभ्याँ = खेड़ी हुई । अँकोर = भेंट ।

**व्याख्या**—प्रार्थना भाव से मीराँ कह रही है कि हे कृष्ण ! तनिक मेरी ओर देख लो, अर्थात् कृपा-दृष्टि डाल दो । मैं लगातार आपकी ओर आशा भरी दृष्टि से निहारती हूँ, परन्तु आप तनिक भी नहीं देखते । आपका हृदय बड़ा कठोर है, जो इस दर्शन के लिए व्यथा से भी द्रवित नहीं होता । हे कृष्ण ! आपकी चितवन ही मेरी एक मात्र आशा है । इसी के सहारे पर मैं जीती हूँ, अन्य मेरे लिए कोई ठौर नहीं है । मैं खड़ी-खड़ी कब से आपसे निवेदन कर रही हूँ परन्तु आप ध्यान भी नहीं देते । यहाँ तक की प्रार्थना करते-करते सवेरा हो गया है । मीराँ के आराध्य, अविनाशी कृष्ण ! अब तो कृपा कीजिए । मैं आपको भेंट स्वरूप अपने प्राणों को ही चढ़ाऊँगा अर्थात् मैं अपना सर्वस्व न्योछावर कर दूँगी ।

**विशेष**—भक्त मीराँ कृष्ण की कृपा के लिए भाव-विह्वल प्रार्थना कर रही है ।

**नैनन वनज बसाऊँ रगी, जो मैं साहिब पाऊँ ।**
**इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँरी ।**
**त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँरी ।**
**सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँरी ।**
**मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँरी ॥4॥**

**शब्दार्थ**—वनज = कमल । नाऊँ = झुकाना । त्रिकुटी महल = दोनों भौंहों के मध्य का स्थान । सुन्न = शून्य मण्डल । सुरत = ध्यान ।

**व्याख्या**—भक्ति भाव से विह्वल मीराँ कह रही हैं कि अगर मैं प्रियतम कृष्ण को प्राप्त कर लूँ तो उसे मेरी आँखों में बसा लूँगी । मेरे इन नेत्रों में कृष्ण निवास करते हैं इसलिए मैं डर के मारे पलक नहीं झपती हूँ । मैं त्रिकुटी महल में मैंने प्रियतम के लिए झरोखा बना रखा हैं, वहीं उनकी झाँकी सजाऊँगी अर्थात् मिलन होगा । मैं शून्य मण्डल में अपना ध्यान लगाऊँगी और प्रिय मिलन हेतु सुख की शैया बिछाऊँगी । मीराँ कहती है कि मेरे तो गिरधर नागर है । मैं उन पर बार-बार न्यौछावर हूँ ।

**विशेष**—(1) आत्म समर्पण का भाव ।

(2) निर्गुण पंथ शब्दावली का प्रयोग ।

**मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।**
**जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।**
**छांडि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।**
**संतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई ।**
**अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम-बेलि बोई ।**
**अब तो बेलि फैल गई, आणंद फल होई ।**
**भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई ।**
**दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोहीं ।।5।।**

**शब्दार्थ**—कानि = मर्यादा । ढिग = पास, निकट । लाज = लज्जा । मोही = मुझको ।

**व्याख्या**—मीराँ कहती है कि मेरे तो गिरधर गोपाल के अतिरिक्त और कोई नहीं है, अर्थात् कृष्ण ही सर्वस्व हैं । जिसके सिर पर मोर-मुकुट शोभित है, मेरा प्रियतम तो वही है । मैंने कृष्ण प्राप्ति के लिए अपने वंश की मर्यादा को छोड़ दिया है । मेरा कोई भी क्या विगाड़ सकता है । मैंने सन्तों के पास बैठ-बैठ कर लोक-लाज को भी तिलांजलि दे दी है । मैंने अपनी प्रेम-बेली को विरह के आँसूओं से सींच-सींच कर ही पुष्ट किया है । और अब तो यह प्रेम रूपी बेली को विरह के आँसुओं और कृष्ण मिलन रूपी आनन्द फल को देने वाली है । अर्थात् कृष्ण प्रेम से ही आनन्द प्राप्त होता है । कृष्ण भक्तों को देखकर तो मैं प्रसन्न होती हूँ परन्तु संसार का व्यवहार देखकर मुझे दुःख होता है और मैं रो पड़ती हूँ । हे गिरधर लाल ! अब तो मेरा उद्धार करो ।

**विशेष**—मीराँ का कृष्ण के प्रति सहज समर्पण का चित्रण है । मीराँ संसार से दुःखी हो गई है । उद्धार की कामना करती है ।

**मैं गोविन्द गुण गाणा ।**
**राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा ।**
**राणैं भेज्या जहर पिलाया, इमिरत करि पी जाणा ।**

**डबिला में भेज्या जु भुजंगम सालिगराम करि जाणा ।**

**मीराँ तो अब प्रेम दिवाणी, सांवलिया वर पाणा ॥6॥**

**शब्दार्थ**—गाणा=गाऊँगी । रूठ्याँ = रूठने पर । वर=पति ।

**व्याख्या**—कृष्ण भक्ति में मग्न मीराँ कहती है कि हे सखि ! मैं तो अब कृष्ण के ही गुणों का गान करूँगी, अन्य का नहीं । मेरे इस कार्य से यदि राजा नाराज हो जायेगा तो उसकी नगरी को छोड़ दूँगी, किन्तु इस कार्य के न करने से अगर कृष्ण रूठ जायेंगे तो संसार में कहीं भी ठौर नहीं है । राणा ने मुझे मारने के लिए विष का प्याला भेजा था, किन्तु मैं तो उसे चरणामृत समझ कर पी गई । फिर उसने पिटारी में बन्द करके काला नाग भेजा, किन्तु उसमें मुझे शालीग्राम का ही रूप दिखाई दिया । मीराँ कहती है, कि अब तो मैं कृष्ण के प्रेम में दिवानी हो गई हूँ और मुझे सांवलिया को (कृष्ण को) पति रूप में प्राप्त करना है ।

**विशेष**—मीराँ जब कुल मर्यादा को छोड़ कृष्ण भजन करने लगी तो राणा ने खूब समझाया । मीराँ नहीं मानी तब राणा ने उसे मारने के लिए 'जहर का प्याला' और 'पिटारी में सर्प' भेजा । मीराँ ईश्वर कृपा से इनसे भी बच गई । इन घटनाओं का अन्यत्र पदों में भी वर्णन है ।

**रे पपइया प्यारे कब को बैर चितार्‌यौ ।**

**मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यौ ।**

**दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ों करवत सार्‌यो ।**

**उठि बैठो वा वृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सार्‌यो ।**

**मीराँ के प्रभु गिरधर नगर हरि-हरिचरणाँ चित धार्‌यो ॥7॥**

**शब्दार्थ**—चितार्‌यौ = स्मरण किया । दाध्याँ = जलना । हिवड़ो = हृदय । करवत = करोती । सार्‌यो = चला दी ।

**व्याख्या**—कृष्ण विरह में बिकल मीराँ कह रही है कि पपीहे रे ! तूने जाने कब का वैर याद किया है । अर्थात् 'पिउ-पिउ' पुकार कर विरह को जगाया है । मैं तो विरह दग्ध अपने भवन में सोयी थी और तूने 'पिउ-पिउ' की पुकार लगाई । जिससे मुझे अपने प्रिय की याद आ गई । इस तरह विरह में जलती पर तूने मानो नमक ही छिड़क दिया । मेरी सुषुप्त पीड़ा को तूने सहसा उभार दिया जिससे मेरे हृदय पर मानो करवत ही चल गई । हे दुष्ट पपीहे ! मुझे सताने के लिए ही तू उड़ कर वृक्ष की डाल पर जाकर बैठा और फिर लगातार 'पिउ-पिउ' पुकारने लगा । कितना निर्मम और दुष्ट है तू । मीराँ कहती हैं कि मेरे आराध्य तो गिरधर लाल है और उनके चरण-कमलों में ही मैंने अपना मन लगा दिया है ।

**विशेष**—विरहिणी की दशा का चित्रण । पपीहे को उपालम्भ देकर मीराँ कृष्ण के चरणों में सर्वस्व न्यौछावर कर देती है ।

**मैं हरि बिनि क्यूं जिवूं री माइ।**
**पिय कारण बौंरी भइ, ज्यं काठहि घुन खाइ।**
**ओखद मूल न संचरै, मोहि लाग्यो बौराइ।**
**कमठ दादुर बसत जल में, जलहि तै उपजाइ।**
**मीन जल के बीछुरै तन, तलफि करि मरि जाइ।**
**पिव ढूंढत बन बन बन गई, कहुं मुरली धुन पाइ।**
**मीराँ के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुख दाई।।8।।**

**शब्दार्थ**—मीन = मछली। तलफि = तड़पकर। बौरी = पागल। काठ = लकड़ी। दादुर = मेंढ़क। कमठ = कछुआ।

**व्याख्या**—हे सखि! कृष्ण के बिना मेरा जीवित रहना मुश्किल है। मैं प्रियतम के बिना पागल हो गई हूँ और उनके बिरह में जर्जर हो रही हूँ। जैसे लकड़ी को घुन खा जाता है। मेरी इस विरह व्यथा पर औषधि का बिल्कुल भी प्रभाव नहीं पड़ता और वैद्य निराश होकर लौट जाता है। मैं प्रियतम के अभाव में जीवित नहीं रह सकती। जिस प्रकार कछुए और मेंढ़क पानी मे ही उत्पन्न होते हैं और पानी में ही पलते हैं, परन्तु मछली पानी से बिछुड़ने पर एक पल भी जीवित नहीं रहती और तड़फ-तड़फ कर मर जाती है, उसी प्रकार बिना प्रियतम के मेरी गति हो रही है। मैं प्रियतम के अभाव में उदास होकर वन-वन खोज में मारी-मारी फिर रही हूँ। विरह-व्यथा मेरे शरीर में व्याप्त हो रही। मीराँ कहती है कि मैं गिरधर की दासी हूँ और वह सुख देने वाला कृष्ण मुझे मिल गया है।

**बिशेष**—कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का चित्रण है।

**कोई कहियौ रे प्रभु आवन की।**
**आवन की मनभावना की।**
**आप न आवै लिख नहीं भेजै, बाण पड़ी ललचावन की।**
**ए दोइ नैण कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।**
**कहा करूं कछू नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।**
**मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दाँवन की।।9।।**

**शब्दार्थ**—मन-भावना = मन को अच्छा लगना। बाण = आदत। नैण = आँखें। चेरी = दासी।

**व्याख्या**—मीराँ अपनी विरह दग्ध दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि अरे! कोई तो भी कृष्ण के आने का समाचार सुनावें। कोई तो उस मन मोहन श्रीकृष्ण के आने की बात कहे। कृष्ण कैसे निर्मोही हैं, न तो वे स्वयं आते है और न पत्र लिखकर ही अपने आने का समाचार देते हैं। उनकी आदत तो लालच देने की पड़ गयी है। मैं अब क्या करूं। मेरे ये दोनों नेत्र कहना नहीं मानते हैं, उनके दर्शन के लिए उत्सुक रहते हैं तथा रात-दिन उनके वियोग में सावन की नदी के समान

बहते रहते हैं। मेरा कुछ भी बस नहीं चलता। क्या करूँ पँख ही नहीं है, वरना उड़कर उनके पास चली जाती। मीराँ कहती है कि मेरे स्वामी ! आप कब मिलोगे मैं तो तुम्हारे दामन की दासी हूँ जैसा आप चाहोगे, मुझे तो वैसा करना पड़ेगा अर्थात् आप जैसे भी मुझे रखोगे वैसे ही रहूँगी।

**विशेष**—मीराँ की विरह दशा का चित्रण।

**अब मैं सरण तिहारी जी, मोंहि राखो कृपानिधान।**
**अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।**
**जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।**
**और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सन्त सुजान।**
**कुबजा नीच भीलणी तारी, जानै सकल जहान।**
**कहँ लगि कहूँ गिनत नहीं आवै, थकि रहै वेद पुरान।**
**मीराँ कहै मैं सरण रावरी, सुनियो दोनों कान ॥10॥**

**शब्दार्थ**—तिहारी = तुम्हारी। कृपानिधान = कृष्ण। तारे = उद्धार किया। अधम = नीच। भाखत = कहते हैं। जहान = संसार। रावरी = आपकी।

**व्याख्या**—मीराँ भगवान कृष्ण से निवेदन कर रही है कि मैंने सारा घर बार छोड़ दिया है। मेरा इस संसार में कोई नहीं है। मैं आपकी शरण में आ गई हूँ, हे कृपानिधान ! मेरी रक्षा करो। आप भक्तों के उद्धारक हो। कितने ही भक्तों का आपने उद्धार किया है—पापी अजामील, नीच कर्म करने वाले सदना कसाई का उद्धार किया। जल में डूबते हुए गजराल को उबारा, वैश्या गणिका आपके नाम स्मरण के कारण ही विमान में बैठकर स्वर्ग को गई और भी कितने ही पापियों का उद्धार किया, ऐसा सन्त समुदाय कहता है। नीच कुल में जन्मी कुब्जा व शबरी भीलनी का उद्धार किया, इस बात को सारा संसार जानता है और भी कितने ही पापियों का उद्धार किया, जिनकी गिनती नहीं की जा सकती। हे कृपानिधान ! इस उद्धार करने की प्रवृति का कहाँ तक बखान करूँ आपकी महिमा का वर्णन करते-करते तो वेद और पुराण ग्रन्थ भी कक गये हैं। अर्थात् इन धार्मिक ग्रन्थों में आपकी महिमा का अनन्त वर्णन किया है। मीराँ कहती है कि हे भगवान ! मैं तो आपकी शरण में आ गई हूँ, मेरा उद्धार करना ही है, यह आप दोनों कान खोलकर सुन लो।

**विशेष**—कृपानिधान कृष्ण की महिमा का वर्णन किया गया है। अजामिल, सदना, गजराज, गणिका, कुब्जा, शबरी आदि का उद्धार भगवान ने किया था। अतः मीराँ भी अपने उद्धार का निवेदन ईश्वर से करती है।

**मेरा मन रामहिं राम रटै रे।**
**राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।**
**जनम जनम के खत जु पुराने, नामहिं लेत फटै रे।**
**कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवन कौन नटै रे।**
**मीराँ कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे ॥11॥**

**शब्दार्थ**—कोटिक=करोड़ों। खत=कागज, पत्र। इम्रत=अमृत। कनक=स्वर्ण। नटै=मना करना।

**व्याख्या**—रामनाथ की महिमा का वर्णन करती हुई मीराँ कहती है कि मेरा मन तो राम-राम ही रटता है। इसी से मेरा उद्धार हो सकता है। इन नाम में मुक्ति दिलवाने की शक्ति है। हे प्राणि! राम के नाम का जप कर ले, इससे करोड़ों पाप कट सकते हैं। जन्म जन्मातर के पाप जो पत्रों के रूप में इकट्ठे हो गये हैं वे राम का नाम लेते ही कट जायेंगे। राम नाम तो स्वर्ण के कटोरे में अमृत के समान है। उसका पान करने से कौन मना कर सकता है। मीराँ कहती है कि मेरे आराध्या हरि तो अविनासी है।

**विशेष**—राम नाम की महिमा का वर्णन किया गया है।

गोविंद सूँ प्रीत करत, तबहिं क्यूँ न हटकी।
अब तो बात फैर परी, जैसे बीज बटकी।
बीच को विचार नहिं, छाँय परी तटकी।
अब चूको तो ठौर नाहिं, जैसे कला नटकी।
जल के बुरी गांठ परी, रसना गुन रटकी।
अब तो छुड़ाय हरी, बहुत बार झटकी।
घर घर में घोल मठोल, बानी घट घट की।
सबही कर सीस धारि, लोक-लाज पटकी।
मद की हस्ती समान, विरत प्रेम लटकी।
दास मीराँ भक्ति बुँब, हिरदय बिच गटकी।।12।।

**शब्दार्थ**—प्रीत=प्रेम। बट=वट वृक्ष। ठौर=स्थान। रसना=जीभ। हरी=भगवान। घोल मठोल=बातें बनाना। गट की=पी गई।

**व्याख्या**—कृष्ण भक्ति में अनुरक्त मीराँ कह रही है मैं गोविन्द से प्रेम करने लगी हूँ, तब फिर सबके मन से क्यों नहीं उतरूँगी। अर्थात् सबके मन में उतर गई हूँ। कृष्ण प्रेम की बात अब तो वट-वृक्ष के बीज से वृक्ष के समान फैल गई। मैंने किसी प्रकार का विचार नहीं किया और वट के पेड़ की छाया की तरह फैल गई हूँ। कृष्ण भक्ति में अब अगर चूक रह जावेगी तो मेरी वैसी दुर्गति होगी जैसे कला-बाजी दिखाते समय चूकने पर नट की होती है। मैं कृष्ण प्रेम में जली जा रही हूँ और रात-दिन मेरी जिव्हा उनका ही नाम रटती है। कृष्ण प्रेम में संकट रूपी कई झटके लगे हैं, अतः हे भगवान मुझे कष्ट से उबार लो। मीराँ आगे कहती है कृष्ण प्रेम को लेकर मेरी घर-घर में बातें बनाई जा रही है, लोग तरह-तरह की बातें बनाते हैं, मैंने इन सबको सहन किया। लोक-लाज को छोड़ कृष्ण भक्ति में लगी रही। मदमस्त हाथी के समान मैं प्रेम दिवानी बनी रही। कृष्ण भगवान की दासी मीराँ कहती है कि मैंने हृदय में भक्ति रूपी बूँद जो गटक ली है। पी ली है। अब कोई परवाह नहीं

**म्हाँ गिरधर रंग राती, सैयाँ म्हाँ ।**
**पंचरंग चोला पहर सखी म्हाँ झिरमिट खेलन जाती ।**
**वाँ झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, देख्या तण मण राती ।**
**जिणरो पिय परदेस वस्यां री, लिख लिख भेज्याँ पाती ।**
**म्हारा पियां म्हारे हीयडे बसतां, णां आवां ना जाती ।**
**मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मग जोवां दिण राती ।।13।।**

**शब्दार्थ**—पंचाग = पाँच रगों का चोला, तंच तत्व शरीर । झिरमिट = एक खेल विशेष । खेल = जीव का जन्म-मरण के रूप में खेलना ।

**व्याख्या**—हे सखि ! मैं तो गिरधर के प्रेम में रंग गई हूँ, उनसे अनुरक्त हो गई हूँ । मैं पंचरंगी चोला पहनकर झिरमिट खेलने जाती हूँ । अर्थात् जैसे नाना रंग बिरंगे वस्त्र पहनकर झिरमिट का खेल खेला जाता है, वैसे ही मैं भी इस पंचभौतिक शरीर के रूप में पंचरंगी चोला (शरीर-वरण) पहनकर जन्म-मरण रूपी झिरमिट का खेल-खेल रही हूँ । उसी झिरमिट के खेल में मुझे मेरा प्रियतम सांवरा (कृष्ण) मिल गया है । जिसे देखते ही तन-मन उस पर अनुरक्त हो गया है । हे सखि ! जिनके प्रियतम परदेश में निवास करते हैं वे पत्र लिख-लिखकर भेजती हैं, परन्तु मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही निवास करता है, अतः न तो मैं कहीं जाती हूँ और न कहीं मैं आती हूँ । अपने हृदय में स्थित प्रियतम के रूप का ध्यान लगाकर, मैं जब चाहती हूँ, दर्शन कर लेती हूँ हे मेरे गिरधर लाल मैं रात-दिन आपके आने की बाट जोहती रहती हूँ ।

**विशेष**—उस पद में निर्गुण शब्दावली का प्रयोग है । प्रतिकात्मक अर्थ भी किया जा सकता है—संसार क्रीडास्थली है । जीवात्मा खिलाड़ी है । पंच-तत्वों-पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश से निर्मित यह शरीर पंच-रंगी चोला है जिसे यह जीवात्मा धारण किये हुए है तथा जन्म-मरण के रूप में चलने वाली लीला ही झिरमिट का खेल है, जिसे यह जीव जन्म-जन्मान्तरों से खेल रहा है ।

**बड़े घर तालो लागां री पुरबला पुन्न जगावां री ।**
**झीलरया री कामणा म्हांरो, डाबरा कुण जावां री ।**
**गंगा जमणा सूं कामणा म्हारे, म्हां जावां दरियावां री ।**
**हेल्यां मेल्यां सूं कामणा म्हारे, पेख्या मिल सरदारां री ।**
**कामदरां सूं कामणा म्हारै, जवां म्हां दरबारा री ।**
**काम कथीर सूं कामणा म्हारे, चढ़स्यां घण री सारयां री ।**
**सोना रूपा सूं कामणा म्हारे हीरां रो बौपारां री ।**
**भाग हमारो जाग्यां रे, रत्नाकर म्हारी सीरयां री ।**
**अम्रित प्यालो छांड़ियां रे, कुण पीवां कड़वां नीरा री ।**
**भगत गणां प्रभु परचो पावां, जावां जगतां दूर्या री ।**
**मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मणरथ करस्याँ पूरयां री ।।14।।**

**शब्दार्थ**—तालो लागां = ध्यान लगाना, प्रीति होना। पुरबला पुन्न = पूर्व जन्म के पुण्य। जगावां = जागे हैं। झीलर्या = छोटी तलैया। डाबरां = छोटे-छोटे गढ्ढे। दरियाव = समुद्र। हेल्या मेल्या = नौकर चाकर। पेठ्या = बैठ गई। कथरि = रांगा, हल्की धातु। घण री साद्या = घन के लोहे, अटूट कृष्ण प्रेम। रूपा = चांदी। रत्नाकार = समुद्र। सीर्या = भाग, हिस्सा। नीरा = जल। परचां = परिचय। मणरथ = मनोरथ, मनोकामना।

**व्याख्या**—हे सखि ! अब तो मेरा अद्वैत ब्रह्म में ध्यान लग गया है। अर्थात् ईश्वर कृष्ण से प्रेम सम्बन्ध हो गया है, यह मेरे पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल है, वरना सम्भव नहीं था। अब मुझे इन छोटे-छोटे तलैयों से काम नहीं है और न ही छोटे बरसाती गढ्ढों से। अब तो मेरा गंगा-यमुना से भी कोई वास्ता नहीं है। अब तो मैं सब नदियों के आश्रय पूर्ण जल के अक्षय भण्डार भगवान श्रीकृष्ण रूपी महासागर की ओर ही उन्मुख हूँ। अब मुझे साधारण नौकर-चाकरों से मिलने की भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मैं अब सम्मानित सरदारों की पंक्ति में जा बैठी हूँ। अब मुझे कामदारों से भी कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि मैंने तो राज-दरबार में ही अपना प्रवेश पा लिया है अर्थात् जगत के स्वामी कृष्ण से प्रेम कर उनका आश्रय प्राप्त कर लिया है अतः अब किसी लौकिक इच्छा का कोई मोह नहीं है। अब मुझे कांच और जस्ते जैसी सहज टूटने वाली वस्तुओं से कोई काम नहीं, मैं तो उस घन के लोहे पर चढ़ूंगी जो उन सब कच्चे पदार्थों की परीक्षा करता है। मुझे सोने-चांदी से कोई काम नहीं है। मैं तो हीरों का व्यापार करती हूँ। आज निश्चय ही मेरा भाग्य जागा है जो मुझे कृष्ण रूपी रत्नाकर में आश्रय मिला है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो अमृत का प्याला छोड़कर कड़वा जल पीए। कृष्ण प्रेम ऐसा ही जल है। मैंने तो भक्त समूह की संगति कर ईश्वर की महिमा का परिचय पा लिया है अब मैं सांसारिक प्रपंचों में नहीं फँसूंगी उससे दूर ही रहूँगी। मीराँ कहती है कि मेरे आराध्य गिरधर लाल मेरे सर्व मनोरथ पूर्ण करेंगे।

**विशेष**—इस पद में निर्गुण पंथ का प्रभाव है। ब्रह्म में ध्यान लग जाना मीराँ अपने पूर्व जन्म के पुण्य मानती है।

**राणा जी थे क्याने राखो म्हांसूं बैर।**
**थे तो राणा जी म्हांने इसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन में कैर।**
**महल अटारी हम सब त्याग्या, त्याग्यो थारो बसनो सहर।**
**काजल टीकी राणा हम सब त्यागा भगवीं चादर पहर।**
**मीरां के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर ॥15॥**

**शब्दार्थ**—थे = आप। इसड़ा = ऐसे। कैर = झाड़ विशेष। बसनो = रहना।

**व्याख्या**—राणा नहीं चाहता था कि मीराँ भगवत् भक्ति का मार्ग अपनाये। मीराँ नहीं चाहती थी कि सांसारिक वैभव का भोग करूँ। अतः दोनों में वैमनस्य

था । मीराँ राणा जी से कह रही है कि हे राणाजी ! आप मुझसे व्यर्थ ही बैर रखते हो । आप व्यर्थ ही मुझसे द्वेष रखते हो, इसीलिए आप मुझे ऐसे लगते हो जैसे वृक्षों में कैर । मेरा तो कृष्ण से अनन्य प्रेम है, उसके लिए मैंने महल-अटारी आदि सब कुछ त्याग दिया है । यहां तक कि आपके शहर में रहना भी छोड़ दिया है । मैंने तो आपसे पूरा सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है । मैंने सौभाग्य सूचक साधन शृंगार प्रसाधन व सौभाग्य चिन्ह त्याग दिये हैं तथा अपने अविनाशी प्रियतम कृष्ण के लिए भगवां वस्त्र पहन लिए हैं । भाव यह कि मैं पूर्णतः विरक्त हो गई हूँ । मीराँ कहती है कि मेरे गिरधर नागर ! यह आपकी ही कृपा थी कि मेरे प्राण-हरण विष अमृत हो गया ।

**पग बाँध घुंघरयाँ णाच्या री ।**

**लोग कह्याँ मीराँ भई बावरी, सास कह्याँ कुलनासी री ।**
**बिष रो प्याले रांणा भेज्यां पीवां मीरां हांसी री ।**
**तण मण वार्यां हर चरणां मां दरसण अमरित प्यास्यां री ।**
**मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणां आस्यां री ॥16॥**

**शब्दार्थ**—णाच्या = नाची ।

**व्याख्या**—मीराँ कह रही है कि मैं श्याम के प्रेम में तन्मय होकर, पैरों में घुँघरू बाँधकर नाच उठी । मेरे इस कार्य-व्यापार को देखकर लोगों ने कहा मीरां पागल हो गई है । सास ने कहा यह कुल नाशिनी है जो लोक-लाज को छोड़कर इस प्रकार नाच रही है । परन्तु मैं तो कृष्ण के प्रेम में दिवानी हो गई थी । अतः मुझे कुछ भी ध्यान नहीं रहा । राणा ने प्राण-हरण के विष का प्याला भेजा जिसे मीराँ हँसते-हँसते पी गई । मैंने तो अपना तन मन सर्वस्व श्याम के चरणों में समर्पित कर दिया है एवं उनके दर्शन रूपी अमृत की प्यासी हूँ । मीराँ कहती हैं कि मेरे आराध्य गिरधर लाल ! मैं तो एक मात्र आपकी शरण में आना चाहती हूँ अतः मुझे अपनी शरण में लेकर उद्धार कीजिये ।

**विशेष**—मीरां सासांरिक बन्धनों को छोड़कर कृष्णमय हो गई है । कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम का चित्रण किया गया है ।

**जोगियाजी निसदिन जोऊं बाट ।**

**पाँव न चाले पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट ।**
**नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाई ।**
**मैं भोली भोलापद कीन्हों राख्यौं नहीं बिलमाइ ।**
**जोगिया कूं जोवत बोहो दिन बीता, अजहूं आयो नांहि ।**
**बिरहु बुझावण अन्तरि आवो, तपन लगी तन माहीं ।**
**कै तो जोगी जग में नाहीं, कै र बिसारी मोइ ।**
**कांइ करूं कित जाऊं री सजनी, नैण गुमायो रोइ ।**

आरती तेरी अन्तरि मेरो, आवो अपनी जाणि।
मीरां व्याकुल बिरहणी रे, तुम बिन तलफत प्राणि॥17॥

**शब्दार्थ**—जोगि = योगी, कृष्ण। दुहेलो = कठिन। आडा = बीच में। औघट-घाट = विकट पथ, अभीष्ट सिद्धि के मार्ग में विघ्न। रमं गया = अन्यत्र चला गया। बिलमाई = लुभाकर। अन्तर = हृदय में। आरति = उत्कट लालसा।

**व्याख्या**—हे जोगिया जी! (कृष्ण) में रात-दिन आपकी राह देखती रहती हूँ, परन्तु आप आते नहीं और न मैं ही आपके पास आ सकती हूँ क्योंकि विरह में मेरे पैर शिथिल हो गए हैं अतः एक पग भी नहीं चला जाता। तुम्हारे पास आने का मार्ग कठिन और कष्टकर है। मैं ही अपने प्रियतम के विछोह का कारण हूँ। वह योगी इस नगर में आया था परन्तु अब अन्यत्र चला गया है, कारण उसने मेरे मन में अपने प्रति कोई प्रीति नहीं देखी। मैं भोली-भाली कैसी नादानी कर बैठी कि घर आए प्रियतम को रिझाकर रोक न सकी। और अब तो उस जोगी की प्रतीक्षा करते-करते बहुत दिन बीत गये परन्तु वह अभी तक नहीं आया। उसके अभाव में मेरा सर्वांग विरहाग्नि से जल रहा है। हे योगी! मेरे अन्तर की धधकती इस विरह-ज्वाला को बुझाने के लिए अब तो आ जाओ। ऐसा लगता है कि वह योगी इस संसार में नहीं है, या फिर वह मुझे बिलकुल भूल गया है। अब मैं क्या करूँ! कहां जाऊं! केवल रोना ही मेरे हाथ है, मैंने रो-रो कर अपनी आंख खो दी। हे योगी! तुमसे मिलने की इच्छा मेरे प्राणों में निरन्तर दहक रही है। अतः मुझे अपनी समझ कर ही आ जाओ। यह विरहिणी मीरां तुमसे मिलने को व्याकुल है। तुम्हारे अभाव में इसके प्राण तड़प रहे हैं।

जोगी मत जा मत जा मत जा, पांइ परूं मैं तेरी चेरी हौं।
प्रेम भगति को पैंड़ों ही न्यारो, हमकूं गैल बता जा।
अगर चाँदण की चिता बणाऊं, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा॥18॥

शब्दार्थ—चेरी = दासी। पैंडों = रीति। गैल = मार्ग। जोत = ज्योति।

व्याख्या—विरह व्याकुल मीरां कह रही है कि हे योगी! तू मुझे छोड़कर मत जा। मैं तेरी दासी हूँ और विनती करती हूँ का मार्ग बड़ा ही निराला है। मुझे प्रियतम (कृष्ण) को पाने का मार्ग बता जा। तुम्हारे बिना अब मैं एक क्षण भी जीना नहीं चाहती। मैं अगरू और चन्दन की चिता बनाऊँगी जिसे तुम स्वयं अपने हाथों से आकर जला जाओ, ताकि मुझे तुम्हारे हाथों से जलने का गौरव मिल जाय, और जब मैं जलकर राख की ढेरी बन जाऊं तो उस राख को अपने अंगों पर लगा लेना ताकि मरणोत्तर मिलन हो जाये। अर्थात भस्म रूप में ही तुमसे मिल लूँ। मीरां कहती है कि मेरे आराध्य गिरधर लाल! तुम अपनी (ब्रह्म) ज्योति में (आत्मा) ज्योति को मिला लो।

विशेष – वियोगिनी मीरां का चित्रण । आत्मा का परमात्मा से मिलन-उत्कंठा का वर्णन ।

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हारा बाला गिरधारी ।
पूर्व जनम की प्रीत हमारी, अब नहिं जात निवारी ।
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छै भारी ।
म्हारे घर पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी ।
मोती चौक पुराऊं बाल्हा, तन मन तो पर वारी ।
म्हारो सगपण तोसूं साँवलिया, जगसूं नहीं विचारी ।
मीराँ कहे गोपित को बाल्हो, हमसूं भयो ब्रह्मचारी ।
चरण सरण है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी ।।19।।

शब्दार्थ – निवारी = छोड़ना । बदन = मुख । बाल्हा = वल्लभ, प्रिय । = न्यौछावर । सगपण = सम्बन्ध । न्यारी = अलग ।

व्याख्या — कृष्ण से जन्म-जन्मान्तर सम्बन्ध मानती हुई मीरां कहती है कि हे कृष्ण मेरा तुम्हारे से पूर्व जन्म से प्रेम है, वह इस जन्म में कैसे छोड़ा जा सकता है, इस हेतु मैं तुम्हारे को क्या-क्या तर्क देकर समझाऊँ । भाव यह कि यह सत्य बात है । मीरां अपनी सखी को सम्बोधित कर कहती है कि हे सजनी ! कृष्ण की सुन्दरता मुख-छवि देखते-देखते ही प्रीत उत्पन्न हो गई है, उसे कैसे भुलाया जाय । हे मेरे गिरधर ! तुम मेरे घर पधारो । आपके आने से आनन्द वर्षा होगी, स्त्रियां मिलकर मंगल गीत गायेंगी, मैं स्वागत में चौक को मोतियों से सजा दूँगी, मैं तुम पर अपना तन मन न्यौछावर कर दूँगी । हे कृष्ण ! मेरा तो पति सम्बन्ध तुमसे ही है । जगत से मेरा कोई लेना-देना नहीं है । मीरां कहती है कि तुम गोपियों से प्रिय बन जाते हो, और मेरे लिए ब्रह्मचारी रूप अपना लेते हो । यह कहां का न्याय है । मैं तुम्हारी शरण में आ गई, तुम्हारे चरणों की दासी हूँ । कृपा कर मुझे एक पल के लिए भी अलग मत करो ।

विशेष (1) अनन्य भक्ति-भाव का चित्रण ।
(2) कृष्ण को पति रूप में मानना ।

डारि गयो मनमोहन पासी ।
आँबाँ की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी ।
बिरह की मारी मैं बन डोलूं, प्रान तजूं करवत ल्यूं कासी ।
मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ।।20।।

शब्दार्थ—पासी = फांसी । केरी = की । ठाकुर = स्वामी, आराध्य ।

व्याख्या—मीरां कह रही है कि मनमोहन कृष्ण मेरे गले में प्रेम का फन्दा डाल गया है । मैं उनके विरह में व्याकुल हो रही हूँ । इसलिए जब आम की डाल पर कोयल बोलती है, तो मेरा मरण ही हो जाता है, और जगत के लोगों के लिए हँसी

हो जाती है। मैं विरह-वेदना में पागल हो अपने प्रियतम की खोज में वन-वन घूमती फिर रही हूँ। जी करता है कि प्रिय वियोग में काशी जाकर करवत ले, अपने प्राण त्याग दूँ, और विरह-वेदना से मुक्त हो जाऊँ। मीराँ कहती है कि हे मेरे अविनाशी प्रभु ! आप ही मेरे स्वामी हैं और मैं आपकी दासी हूँ। अतः शीघ्र दर्शन दें, मेरा उद्धार कीजिए।

विशेष—माधुर्य भावना के साथ दास्य-भावना का सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

पतिआँ मैं कैसे लिखूं, लिखियो री न जाय।
कमल धरत मेरो कर कंपत, नैनन रहे भरलाय।
बात कहुं मोहि कहत न आवै, जीय रह्यो डरराय।
विपत हमारी देख तुम चाले कहिया हरि जी सू जाय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण ही कँवल रखाय ॥21॥

शब्दार्थ—पतियाँ = पत्र। धरत = पकड़ते ही। डररायं = विरह से त्रस्त।

व्याख्या—हे सखी ! प्रियतम कृष्ण को मैं पत्र कैसे लिखूँ। विरह-वेदना के कारण पत्र नहीं लिखा जाता। पत्र लिखने के लिए ज्यों ही मैं कमल हाथ में लेती हूँ, मेरे हाथ काँपने लगते हैं और आँखों में आँसुओं की झड़ी लग जाती है। इसके साथ ही रूदन से गला भर आता है, अतः मैं लिखित सन्देश भी कहते नहीं बनता है और इस दारुण विरह-संताप से जी त्रस्त रहता है। हे पथिक ! मेरी इस विरह-दशा को तुमने स्वयं अपनी आँखों से देखा है, अतः जैसा देखा है, वैसा ही निवेदन कर देना। हे मेरे प्रभु गिरधर नागर ! मीराँ की तो इतनी सी ही विनती है कि मुझे अपने चरण-कमलों में ही रखना।

विशेष—यह पद सन्देश-प्रेषण परम्परा में लिखा गया है।

पपइया रे पिव की बाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारो राखेली पांव मरोड़।
चांच कटाऊं पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै स कूण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चाँच मढाऊं थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम कूं पतियाँ लिखूं, कउवा तू ले जाइ।
जाइ प्रीतम जी सूं यूं कहै रे, थाँरी बिरहणि धान न खाइ।
मीरां दासी व्याकुल रे, पिव पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी, तुम बिनि रह्यो ही न जाइ ॥22॥

शब्दार्थ—पिव = प्रियतम। थारी = तुम्हारी। कालर-लूण = काला नमक। मेला = मिलन। सोवनी = स्वर्ण से। धान = अन्न।

व्याख्या—पपीहा के माध्यम से विरह व्यथा का मार्मिक वर्णन किया है। पपीहे को सम्बोधित करती हुई मीराँ कहती है कि हे पपीहा ! तू प्रियतम की वाणी मत बोल, मुझे प्रियतम की याद मत दिला। अगर तू नहीं मानेगा तो तेरा स्वर सुन-कर विरहिणी तेरे पंखों को मरोड़ डालेगी। मैं तेरी चोंच कटवाकर उस पर काला नमक छिड़कवा दूँगी। क्या तू नहीं जानता कि प्रियतम मेरा है और मैं प्रियतम की हूँ, फिर भला, तू पिव कहने वाला कौन है ? यदि तेरा पिव-पिव का स्वर सुन-कर प्रियतम मुझे मिल जाये तो हे पपीहे ! मैं तेरी चोंच को सोने से मँढवा दूँगी। तू प्रियतम से यह सन्देश कहना कि विरहिणी मीराँ व्याकुल है और प्रियतम को याद करके अपने प्राणों को त्याग रही है। प्रियतम से कहना कि जल्दी आकर मुझे दर्शन दें। उसके बिना मुझसे रहा नहीं जाता।

विशेष—विरह व्यथा का परम्परागत वर्णन।

**तुमरे कारण सब सुख छांडया, अब मोहि क्यूँ तरसावौ हो।**
**विरह विथा लागी उर अन्तर सो तुम आप बुझावौ हो।**
**अब छोड़त नहि बणै प्रभु जी हंसी करि तुरत बुलावौ हो।**
**मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो ।।23।।**

शब्दार्थ—तुमरे = तुम्हारे। उर-अन्तर = हृदय में।

व्याख्या—हे प्रियतम ! मैंने तुम्हारे कारण सब कुछ छोड़ दिया है। अब तो आकर दर्शन दो, मुझे क्यों तड़फा रहे हो। दर्शन देकर विरह-व्यथा को जो हृदय में लगी हुई है, बुझा दो। मेरी प्रीति इतनी गहन हो गई है कि अब छोड़ते भी नहीं बनती। अत: प्रसन्न होकर अपनी शरण में ले लो। मीराँ कहती है कि मैं तो तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की दासी हूँ। इसलिए अपने अंग से लगा लो।

विशेष—मीराँ की संसार से विरक्ति भाव व कृष्ण अनन्य प्रेम का चित्रण किया है।

**पिय बिन सूनौ छै म्हारौ देस।**
**ऐसा है कोई पीवकूं मिलावै, तन मन करूं सब पेस।**
**तेरे कारण बन बन डोलूं, कर जोगण को भेस।**
**अवधि बदीती अजूँन आए, पंडर होई गया केस।**
**मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, तजि दियो नगर नरेस ।।24।।**

शब्दार्थ—सूनो = सुनसान। पेस = हाजिर। बदीती = समाप्त होना पंडर = श्वेत।

व्याख्या—विरह दग्ध मीराँ कह रही है कि प्रियतम के बिना मेरा देश ही सूना है। व्यथित होकर कहती है कि कोई ऐसा है जो मुझे प्रियतम से मिला दे अगर ऐसा सम्भव हो जाये तो मैं मेरा तन-मन हाजिर कर दूँगी, अर्थात् जो प्रियतम से मिलादे उस पर सर्वस्व न्योछावर कर दूँगी, हे प्रियतम ! तुमसे मिलने के कारण मैं जोगण का वेश पहन कर बन-बन डोल रही हूँ तुम्हारे आने की अवधि

समाप्त हो रही है, मैं बाट जो रही हूँ, तुम आज तक नहीं आये। तुम्हारी बाट जोहते हुए, मेरे सिर के बाल श्वेत हो गये अर्थात् वृद्धावस्था आ गई है। मीराँ कहती है कि प्रभु गिरधर ! तुम कब मिलोगे, मैंने तुम्हारे कारण नगर और राजा को छोड़ दिया है। अब मेरा संसार में कोई नहीं है।

**झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मनभावन की।**
**सावन में उमग्यो मेरा मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।**
**उमड़ घुमड़ चहुं दिसि से आयो, दामण दमक झर लावन की।**
**नन्हीं नन्हीं बूंद में मेहा बरसै, सीतल पवन सोहावन की।**
**मीरां के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की ॥25॥**

**शब्दार्थ**—बदरिया = बदली। भनक = आवाज। दामण = बिजली। झर = झड़। नन्हीं = छोटी।

**व्याख्या**—सावन का महिना आनन्द का, उमंग का महिना होता है। प्रियतम के साथ आनन्द-केली की जाती है। मीराँ सावन के महिने में प्रियतम कृष्ण को याद करती है। सावन में मन उमंग से भरा है। मीराँ कहती है कि सावन के महिने में बदलियाँ उमड़-घुमड़ कर आ गई है। यह मन को भाने वाली है। सावन के महिने में मेरा मन उमंग से भर गया है क्योंकि मैंने हरि के आने कि भनक सुन ली है। प्रियतम को आना ही चाहिए क्योंकि सावन में बादल चारों ओर से उमड़-घुमड़ कर आ रहे हैं, बिजली चमक रही है और वर्षा की झड़ी लगी हुई है। मैं बिना प्रियतम के कैसे रह सकती हूँ। शीतल पवन बह रहा है, रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा है। मीराँ कह रही है कि हे मेरे प्रभु गिरधर नागर ! यह ऋतु तो आनन्द युक्त मंगल गान गाने की है। अतः आप अवश्य पधारो।

**विशेष**—कृष्ण इन्तजार का वर्णन किया गया है।

**बदला रे तू जल भरि लै आयो।**
**छोटी-छोटी बूंदन बरसन लागी, कोयल सबद सुनायो।**
**गाजै बाजै पवन मधुरिया, अम्बर बदरां छायो।**
**सेज संवारी पिय घर आये, हिलमिल मंगल गायो।**
**मीरां के प्रभु हरि अबिनासी, भाग भलो जिन पायो ॥26॥**

**शब्दार्थ**—मधुरिया = मंद-मंद। सेज = शैया। सवारी = सजा दी। भाग = भाग्य।

**व्याख्या**—कृष्ण मिलन का इन्तजार करती हुई मीराँ कहती है कि हे बदरा ! तुम जल लेकर आ गये हो। हे सखि ! बून्दें झर-झर कर बरस रही है और कोयल भी कूकने लगी हैं। मन्द-मन्द गरजना करता हुआ पवन बह रहा है, अंबर में बादल छा गये हैं। ऐसे वातावरण में मैंने शैया सजा दी है। अतः हे प्रियतम ! अब तुम घर आ जाओ, जिससे प्रसन्न होकर में सखियों के साथ मंगल गीत गाऊँ। मीराँ कहती है कि हे मेरे अविनाशी हरि ! जिनका सौभाग्य होता है उन्हें ही तुम्हारा दर्शन लाभ प्राप्त होता है।

म्हारां ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाँया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूं मेरे आणंद छाया, जी।
मगन भई मिली प्रभु आपणासूं, भौ का दरद मिटाया, जी।
चंद कूं देखि-देखि कमोदणी फूलै, हरखि भया मेरी काया जी।
रग-रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।
सब भगतान का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरां बिरहिणी सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया जी। ॥27॥

शब्दार्थ—ओलगिया = प्रवासी (प्रियतम)। कमोदणि = कुमुदिनी। फूलै = प्रसन्न। दुन्द = द्वन्द्व, कष्ट।

व्याख्या—हे मेरे प्रवासी प्रियतम ! अब घर लौट आओ। आपके आने पर ही मेरे तन का ताप मिटेगा, तथा अपने हिल-मिल कर मंगल गीत गायेंगे। आकाश में मेघ घिर आये हैं। उनकी मन्द-मन्द गर्जन सुन कर मयूर आनन्द मग्न हो गए हैं। हे प्रियतम ! ऐसे ही मेरे आँगन में आओ जिससे आनन्द छा जाये। मैं प्रियतम से मिलकर आनन्द मग्न हो जाएँगी और मेरा सासांरिक दर्द मिट जायेगा। अर्थात् हरि कृपा से सब दुःख मिट जायेंगे और मुक्ति मिल जायेगी। अपने प्रियतम चन्द्रमा को देखकर जैसे कुमुदनी खिल उठती है, वैसे ही तुम्हारे दर्शन द्वारा मुझे प्रसन्न कर दो प्राणों में मिलन की उमंग भरे हुए तुम मेरे मन में छा जाओ। हे सखि ! प्रियतम का मिलन होने पर हो मेरा रोम रोम शीतल होगा, मेरा विरह शान्त होगा। अतः हे मोहन ! मेरे महल में आकर मुझे मिलन का सुख दो। आपने सब भक्तों के कार्य सिद्ध किए हैं। उन्हीं प्रभु को मैंने प्राप्त किया है। मीराँ कह रही है कि हे कृष्ण ! मीराँ तो विरहिणी है, आप आकर उसके विरह को शीतल करो, सब दुःख द्वन्द्वों को दूर करो।

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले एक छिन में।
पिय मिल्या मोहि किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने।
सतगुरु सबद लखाय असरी, ध्यान लखाया धन में।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में ॥28॥

शब्दार्थ—राजी भई = प्रसन्न हो गई। मोहि = मुझको। दीदार = दर्शन। असरी = थोड़ा सा।

व्याख्या—कृष्ण मिलनोपरान्त मीराँ आनन्द मग्न हो गई है। आनन्दानुभूति का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं मन में बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि मुझे प्रियतम एक क्षण में मिल गये। ईश्वर ने बड़ी कृपा की है मुझे दर्शन लाभ दिया और प्रियतम से भी मिला दिया हैं। मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई है। सतगुरु ने सार्थक शब्द ज्ञान दिया और बहुत थोड़े समय में ही ध्यान (प्रियतम/ईश्वर) लगवा दिया। मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हैं ! उन्हें प्राप्त कर मीराँ मन ही मन आनन्द मग्न हो गई है।

विशेष—सतगुरु कृपा से ही प्रियतम ब्रह्म से मिलना संभव है। ईश्वर मिलन का आनन्द अद्वितीय है।

# ढोला मारु रा दूहा (कुशल लाभ)

## मारु : स्वप्न में पतिदर्शन और विरहाकुलता

**जिमि-जिमि मन अमले किधइ, तार चढंती जाइ।**
**तिम तिम मारवणी तणइ, तन तरणपड थाइ ॥1॥**

शब्दार्थ—जिमि-जिमि = ज्यों ज्यों। अमले = अधिकार। तिम-तिम = त्यों-त्यों। तरणापड = यौवन प्रकट।

व्याख्या—यौवनावस्था प्राप्त मारवणी का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि ज्यों-ज्यों मारवणी में मन उन्मेष हो रहा है, अर्थात् काम का आविर्भाव हो रहा है और उसके शरीर में यौवन के गुण आ रहे हैं त्यों-त्यों उसके शरीर में यौवन प्रकट होता जा रहा है।

**विशेष**—यौवन के गुणों की ऊँचाई की चढ़ाना ही 'तार चढ़ंती जाई' है।

**असइ आरखइ मारुवी, सूती सेज बिछाइ।**
**साल्ह कुंवर सुपनइं मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥2॥**

शब्दार्थ—असइ = ऐसी। आरखइ = स्थिति मे। निसासउ = निःश्वास। खाइ = लेकर।

**व्याख्या**—स्वप्न में प्रिय मिलन का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ऐसी (यौवनागम की) अवस्था में मारवणी शैया पर सोई थी कि स्वप्न में प्रियतम साल्ह कुंवर से मिलन हुआ। जइ नींद खुली स्वप्न टूट गया वह निराश हो, दीर्घ निःश्वास लेने लगी।

**विशेष**—स्वप्न दर्शन द्वारा पूर्वराग चित्रण।

**ऊलंबे सिर हथ्थड़ा, चाहंती रसलुध्ध।**
**विरह महाघण अमढ्यउ, थाह निहालइ मुग्ध ॥3॥**

**शब्दार्थ**—ऊलबे = टिकाये हुये। हथ्थड़ा = हथेली पर। चाहंती = प्रेम के। लुध्ध = लुब्ध। महाधण = भयानक बादल। अमढ्यउ = उमड़ा। मुग्ध = मुग्धा।

व्याख्या—मुग्धा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि मारवणी अपनी हथेली पर सिर टेके हुए, प्रेम के रस में डूबी, खोई हुई, मारवणी उमड़ते गुए विरह रूपी महाधन की थाह पाना चाहती है।

**विशेष**—मुग्धा नायिका का चित्रण।

**ऊलंबे सिर हथ्थड़ा, चाहंती रसलुध्ध।**
**ऊंची चढ़ि चातृंगि जिउं, मागि निहालइ मुध्ध ॥4॥**

**शब्दार्थ** – अलंबे = टिकाये बुए । चातृंगि = चातक । जिउं = जैसे । मागि = मार्ग । निहालइ = देखती है ।

**व्याख्या**—पति की प्रतिक्षा करती हुई मारवणी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि हथेली पर सिर टिका कर प्रेम-रस में डूबी मारवणी ऊँची चढ़क उसी प्रकार प्रिय का मार्ग देख रही है, जैसे चातक पक्षी स्वाति बादल की प्रतीक्ष करता है ।

**विशेष**—मुग्धा नायिका का चित्रण । प्रतिक्षा भाव ।

थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारु आसा लुब्ध ।
परदेसे घाँधल घणा, विरवउ न जाणइ मुग्ध ॥5॥

**शब्दार्थ**—आसालुब्ध = आशालुब्ध । घाँघल = संकट । विरवउ = कष्ट ।

**व्याख्या**—मारवणी विरह की थाह लेती है, दिन गिन रही है, प्रियतम आगमन की आशा में बँधी हुई है । वह मुग्धा, नहीं जानती कि परदेश में बहुत झंझट हैं, कष्ट हैं ।

**विशेष**—मुग्धा मारवणी के भोलेपन का चित्रण ।

ऊनमियउ उत्तर दिसइं, गाज्यउ गुहिर गंभीर ।
मारवणी प्रिउ, संभर्यउ, नयणे वूढ़उ नीर ॥6॥

**शब्दार्थ**—ऊनमियउ = उमड़ा । दिसइ = दिशा । गाज्यउ = गरजा । गुहिर = गहन । संभर्यउ = स्मरण करती है । वूढउ = बहने लगे ।

**व्याख्या**—उत्तर दिशा में बादल उमड़ उठे, वह गहन गम्भीर ध्वनि से गरजने लगे । उन बादलों को देखकर मारवणी प्रिय का स्मरण करती है और उसके नेत्रों से जल बहने लगता है ।

**विशेष**—प्रिय स्मरण का चित्रण किया गया है ।

मारून आखइ सखी आज स काँई उदास ।
कांम चित्रांम जु दिट्ठ मइं रूप न भुलंइ तास ॥7॥

**शब्दार्थ**—नूं = से । आखइ = कहती है । कांम = कामदेव । चित्रांम = चित्र । मइं = मैंने । तास = वह ।

**व्याख्या**—सखी मारवणी से कहती है कि तुम आज उदास क्यों हो ? मारवणी उत्तर देती है, मैंने जो कामदेव के समान (ढोला) चित्र देखा (स्वप्न में) है, वह रूप भुलाया नहीं जा रहा है ।

**विशेष**—प्रेमासक्ति का चित्रण ।

अम्हां मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम ।
तइं अणदिट्ठा सज्जणा, किउं कर लग्गा पेम ॥8॥

**शब्दार्थ**—अम्हां = हमें । आखइ = कहती है । एम = ऐसा । अणदिट्ठा = अनदेखा ।

**व्याख्या**—मारवणी की बात सुनकर सखियों ने कहा, हे मारवणी ! हमारे ान में आश्चर्य है कि तुमने अनदेखे प्रियतम से प्रेम क्यों कर लिया है।

**ससनेही समदां परइ, वसत हिया मंझार।**
**कुसनेही घर आंगणई, जांण समंदाँ पार ॥9॥**

**शब्दार्थ** – ससनेही = नेही। परइ = पार। मंझार = मध्य में।

**व्याख्या** – सखियों के प्रश्न का उत्तर देती हुई मारवणी कहती है कि स्नेही यक्ति समुद्र पार रहने पर भी हृदय में निवास करता है और स्नेह हीन व्यक्ति घर-आँगण रहता हुआ भी समुद्र पार जैसा रहता है।

**विशेष**—प्रेम की लगन को व्यक्त किया गया है।

**सखिए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्ठा तोइ।**
**खिण-खिण अन्तर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ ॥10॥**

**शब्दार्थ**—वल्लाह = वल्लभ, प्रिय। जइ = यद्यपि। खिण-खिण = क्षण-ंभरइ = स्मरण करता है। विसारइ = भुला देना। अंतर = हृदय।

**व्याख्या**—मारवणी कहती है, हे सखि ! यद्यपि साजन अनदेखा है, तब मो ं उसे कभी नहीं भूल पाती। मेरा हृदय उसे क्षण-क्षण स्मरण करता रहता है और उसे भूल नहीं पाता है।

**मारूनूं आखइ सखी, एह हमारी बुझ्झ।**
**साल्ह कुंवर सुहिणइ मिल्यउ, सुन्दरि सऊ वर तुझ्झ ॥11॥**

**शब्दार्थ** – एह = यह। बुझ्झ = समझ। सुहिणइ = स्वप्न में। सऊ = वही। तुझ्झ = तेरा।

**व्याख्या** – मारवणी की प्रेम एकनिष्ठा देखकर सखियाँ कहती हैं कि यह हमारा विचार है कि स्वप्न में जो तुम्हें प्रियतम साल्ह कुंवर मिला है, वही तुम्हारा पति है।

**विशेष**—स्वप्न में घटी घटना को सत्य मानना, लोक मानस की प्रवृत्ति है। मारवणी की शादी भी तो साल्ह कुंवर के साथ होती है। अतः वह इस लोक आदर्श की स्थापना करती है। स्वप्न में प्रति रूप स्वीकार व्यक्ति के प्रति प्रेम हो जाता लोक आदर्श है।

**हे सखिए परदेश प्री, तनह न जावइ ताप।**
**बाबहियउ आसाढ़ जिम विरहणि करइ विलाप ॥12॥**

**शब्दार्थ**—तनह = तन का। प्री = प्रियतम। बाबहियउ = पपीहा। जिम = जैसे।

**व्याख्या**—मारवणी सखियों से कहती है, हे सखि ! मेरा प्रियतम परदेश में है, विरह-ताप शरीर से जाता नहीं है। आषाढ़ के महीने में पपीहा जैसे पुकार करता है, वैसे ही विरहिणी भी विलाप करती है।

विशेष – उपमा अलंकार। मारवणी के विरह-जन्य विकल स्थिति क
चित्रण।

**बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवां एक सहाव।**
**जब ही बरसइ घण घणउ, तबह कहइ प्रीयाव ॥13॥**

शब्दार्थ—बाबहियउ = पपीहा। नइ = और। दुहुवां = दोनों का। सहाव = स्वभाव। घणउ = अधिक।

व्याख्या – पपीहा पक्षी और विरहिणी स्त्री दोनों का एक सा स्वभाव है जब बादल घनीभूत रूप में वर्षा करते हैं, तब दोनों ही 'प्रिय आओ' कर पुका उठते हैं।

विशेष – पपीहा और विरहिणी में सुन्दर भाव साम्य बताया गया है

**बाबहिया, चढ़ि गऊख सिरि चढ़ि ऊँचइरी भीत।**
**मतही साहिब बाहुड़इ, कइ गुण आवइ चीत ॥14॥**

शब्दार्थ – गउख = गवाक्ष। ऊंचइरी = ऊँची। भीत = दीवार। मतही = कहीं। बाहुडइ = लौट आइ। कइ = कोई।

व्याख्या – मारवणी पपीहे से कह रही है हे पपीहे! तू महल के किस गवाक्ष में चढ़कर या ऊँची दीवार पर चढ़कर बोल, शायद तेरी मधुर आवाज प्रियतम के मन में कोई गुण याद आ जावे और वे लौट आये।

विशेष – प्रिय मिलन की उत्कट इच्छा का वर्णन किया गया है।

**बाबहिया, चढ़ि डूंगरे, चढ़ि ऊँचइरी पाज।**
**मत ही साहिब बाहुड़इ सुणि मेहांरी गाज ॥15॥**

शब्दार्थ – डूंगरे = पहाड़। पाज = पाल। गाज = गर्जना।

व्याख्या – मारवणी फिर कह रही है, हे पपीहे तू ऊँचे पहाड़ पर चढ़कर सरोवर की ऊँची पाल पर चढ़कर पुकार जिससे मेघ आ जायें और मेघों की गर्ज सुनकर ह प्रियतम लौट आयें।

**बाबहिया, तू चोर, थारी चाँच कटाबिसूं।**
**रति ज दीन्हीं लोर, मई जाणयउ प्री आविअउ ॥16॥**

शब्दार्थ—रातिज = रात्रि को। लोर = आवाज। मई = मैं। जाण्यउ = जाना।

व्याख्या—मारवणी पपीहे को उपालंभ देती हुई कह रही है, हे पपीहे! बड़ा चोर है, मैं तेरी चोंच कटा दूंगी। मैं रात्रि में निश्चिन्त सो रही थी, तूने लगाई। मैंने जाना प्रियतम आ गये परन्तु प्रिय नहीं आये।

विशेष – मारवणी की आशा निराशा में बदल जाती है, इसलिए पपीहे गुस्सा करती है। नारी सुलभ गुणों का चित्रण।

**बाबहिया निलपंखिया, मगरि ज काली रेह।**
**मति पावस सुणि विरहणी, तलफि जिउ देह ॥17॥**

शब्दार्थ—निलपंखिया = नीले पंखों वाले। मगरिज = पीठ पर। रेह = रेखा।

व्याख्या—पपीहे द्वारा पिउ-पिउ बोलने की आदत से विरहिणी मारवणी परेशान है। वह पपीहे से कह रही है, हे नीले पंखों वाले और पीठ पर रेखाओं वाले पपीहे! कहीं वर्षा ऋतु में तेरी हृदय विदारक आवाज सुनकर कोई सहृदय विरहिणी तड़प कर अपने प्राण न दे दे। इसलिए तू पिव-पिव बोलना बन्द कर दे।

**बाबहिया तरपंखिया, तइं किऊ दीन्ही लोर।**
**मइ जाणयउ प्रिउ आविययउ ससहर चंद चकोर ।।18।।**

शब्दार्थ – तरपंखिया = गहरे रंग के पंखों वाले। तइ = तूने। किऊ = क्यों। लोर = आवाज। ससहर = चन्द्रमा।

व्याख्या – मारवणी पपीहे से कह रही है, हे गहरे रंग के पंख वाले पपीहे! तूने पिव-पिव की पुकार क्यों लगाई। मैंने तो यह जाना कि मेरा प्रियतम चकोरों का चन्द्रमा ही आ गया है। मारवणी रूपी चकोर का सालह कुंवर रूपी चन्द्रमा है।

विशेष—उपमा अलंकार। मारवणी प्रियतम के लिए आतुर है। क्षण-क्षण में उसे लगता है कि प्रियतम आने वाले हैं।

**बाबहिया निलपंखिया बाढ़त दइ दइ लूण।**
**प्रिय मेरा मइ प्रीउ की तू प्रिउ कहइ स कूण ।।19।।**

शब्दार्थ – बाढ़त = काटता है। दइ-दइ = दे दे कर। लूण = नमक। कूण = कौन।

व्याख्या – विरह दग्ध मारवणी कह रही है, हे नीले पंखों वाले पपीहे! तू अपनी पुकार से मुझे नमक लगा-लगा कर काट रहा है, अर्थात तेरी टेर मुझे भयंकर कष्ट देती है। रे पपीहे! मैं अपने प्रिय की हूँ, प्रिय मेरा है तू बीच में ही पिउ-पिउ कहकर पुकारने वाला कौन है।

विशेष – विरह जन्य उन्माद और ईर्ष्या भाव का चित्रण।

**बाबहिया रतपंखिया बोलइ मधुरी बाँणि।**
**काइ लवंतउ साढि करि, परदेशी प्रिउ आणि ।।20।।**

शब्दार्थ—रत = लाल। बाँणि = वाणी। आँणि = ले आ।

व्याख्या–मारवणी कह रही है, हे लाल पंखों वाले पपीहे! तू बहुत मीठी वाणी बोलता है, तेरी वाणी से हृदय द्रवित हो जाता है। या तो तू अपनी वाणी को चुप करके रह या मेरे प्रवासी प्रिय को ले आ।

**बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि, प्रिय को नाम न लेह।**
**काइक जागइ विरहणी, प्रीउ कह्यां जिउ देह ।।21।।**

शब्दार्थ—काइक = कोई। जिउ = प्राण। देह = दे देगी।

व्याख्या—मारवणी पपीहे से कह रही है, हे पपीहे ! तू रात्रि पिउ-पिउ मत कहा कर, प्रिय का नाम ही मत ले । यदि कोई विरहिणी प्रिय-वियोग में जा रही होगी तो तेरी वाणी सुनकर प्राण ही दे देगी ।

**विशेष**—विरह व्यथा का चित्रण ।

**बावहिया डूंगर दहण छांड़ि हमारउ गांव ।**
**सारी रात पुकारियउ लइ—लइ प्रियकउ नाँम ।।22।।**

शब्दार्थ—डूंगर = पर्वत । दहण = जलाने वाले । लइ-लइ = ले ले कर ।

**व्याख्या** – प्रिय वियोग में दुःखी मारवणी को पपीहे की आवाज जलाने की अवस्था में पहुँचा देती है ? मारवणी कहती है, हे पपीहे, तू अपनी आवाज से जंगल वाला है, अर्थात् प्रिय वियोग में जंगल भी जलता सा लगता है । तू मेरे गांव को छोड़ दे, तू सारी रात प्रिय का नाम ले-ले कर पुकारता है । ऐसा न हो कि सारा गाँव ही विरह की आग से जल जाये ।

**चहूं दिसि दामिनि सघन घन, पीउ तजी किण बार ।**
**मारू मन चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ।।23।।**

शब्दार्थ – चहूँदिसि = चारों दिशाओं में । दामिनि = बिजली । तिन = ऐसे । बार = समय ।

व्याख्या – प्रकृति में चारों ओर सघन बादल छा रहे हैं, बिजली चमक रही है। ऐसे समय में प्रिय ने अपनी प्राण प्यारी मारवणी को छोड़ दिया है । प्रिय वियोग में मारवणी मानो मर गई और वह चातक के रूप में प्रिय-प्रिय पुकार रही है ।

**गिरिवर मोर गहक्किया, तवर मूंक्या पात ।**
**धणिया धण सालण लगा, बूढतै बरसात ।।24।।**

शब्दार्थ – गहक्किया = उमंग में भर गये । मूक्या = दिये । धीयां – पति । धण – स्त्री । सालण – कष्ट देने लगा ।

व्याख्या – वर्षा ऋतु का आगमन हो गया, पहाड़ों पर मयूर उमंग भर-भर कर बोल रहे हैं, वृक्षों को इस ऋतु ने नये पत्ते दिये हैं, विरहिणों को पतियों की याद सालने लगी है ।

विशेष – प्रकृति का उद्दीपन चित्रण ।

**राजा, परजा, गुणियजण, कविजण, पडित पात ।**
**सगलाँ मन ऊछव हुमड़, बूठंजै बरसात ।।25।।**

शब्दार्थ – सगलाँ – सबके । ऊछव – उत्सव । बूठंजै—बरसने से ।

व्याख्या—वर्षा के बरसने से राजा, प्रजा, गुणीजन, कविजन, पंडित और वृक्ष के पत्ते इन सबके मन हर्षित हुए । एक अभागिन विरहिणी ही ऐसी है, जिसको दुःख होता है ।

विशेष—विरह का चित्रण।

**ऊनमि आई बद्दली, ढोलउ आयउ चित।**
**यो बरसइ रितूआपणी, नइण हमारे नित ।।26।।**

शब्दार्थ – ऊनमि = उमणी। नइण = नयन। नित = नित्य।

व्याख्या—मारवणी कहती है कि वर्षा ऋतु में बादली उमड़ कर आई है और मेरे चित्त में प्रियतम उमड़ कर आया है। यह बदली तो ऋतु विशेष में ही बरसती है, परन्तु मेरे नयन तो प्रिय वियोग में नित्य ही बरसते हैं।

**ऊनमियउ उत्तर दिसइं मेडी ऊपर मेह।**
**ते विरहिणि किम जीवसे प्यारा दूर सनेह ।।27।।**

शब्दार्थ = ऊनमियउ = उमड़ा है। दिसइ = दिशा। मेड़ी = अटारी। किम = कैसे।

व्याख्या – उत्तर दिशा की ओर अटारी पर मेंह उमड़ आया है। अब वह विरहिणी जिसका प्रेमी दूर है किस प्रकार जिएगी।

विशेष—प्रिय अभाव में सुहावनी ऋतु भी कष्ट कारक लगती है।

**ऊनमियउ उत्तर दिसइं काली कंठलि मेह।**
**हूँ भीजं घर अगणइ, पिउ भीजई परदेह ।।28।।**

शब्दार्थ – काली कंठलि मेह = काली कोर वाला बादल। परदेह = परदेश।

व्याख्या – विरहिणी मारवणी कह रही है कि उत्तर दिशा की ओर से काली किनारी वाला बादल उमड़ा है। हे सखि ! मैं अपने घर के आंगन में भीगती हूँ और मेरा प्रियतम परदेश में भीगता है।

विशेष—बादल का विरहोद्दीपक रूप में वर्णन। इस ऋतु में प्रियतम को यहां होना चाहिए था, यह कहना चाहती है।

**गिरह पखालण, सर भरण, नदी हिंडोलणहारि।**
**सूती सेजइं एकली, हइ हइ दइव म मारि ।।29।।**

शब्दार्थ—पखालण = प्रक्षालन। सर = सरोवर। हिंडोलण हारि = झकझोरने वाला। हइ-हइ = हा हा खाना। म = मत।

व्याख्या—वर्षा ऋतु के लिए मारवणी कह रही है कि पर्वतों का प्रक्षालन करने वाली, सरोवर को भरने वाली, नदी को झकझोरने वाली यह ऋतु है, अर्थात् प्रकृति को भरी-पूरी करने वाली है। इस ऋतु में शैया पर अकेली सो रही हूँ। हे देव ! मैं तेरे हा हा खाती हूँ, दया मांगती हूँ कि मुझे प्रिय अभाव में तड़फाकर मत मार।

**जल थल, थल जल, हुइ रह्यउ, बोलइ, मोर किगार।**
**स्रावण दूभर हे सखी किहाँ मुझ प्राण अधार ।।30।।**

शब्दार्थ – किंगर = कगार । दूभर = कठिन । किहां = कहां ।

व्याख्या – वर्षा ऋतु में अत्यधिक जल बरसने के कारण स्थल और जल स्थल एक से हो रहे हैं अर्थात् सर्वत्र जल ही जल हो गया है और तालाब के कंगारों पर मयूर बोल रहे हैं । हे सखि ? यह सावन मास मेरे लिये दुस्सह्य हो रहा है और मेरे प्राण आधार प्रियतम पता नहीं कहां है ।

बिज्जलियाँ नीलज्जियाँ, जलहर तूं ही लज्जि ।
सूनी सेज, विदेस प्रिय मधुरइ-मधुरइ गज्जि ।।31।।

शब्दार्थ—बिज्जुलियाँ = बिजलियाँ । नीलज्जियां = निर्लज्ज । जलहर = बादल । मधु रइ = धीरे । गज्जि = गरज ।

व्याख्या – मारवणी बादलों को सम्बोधित कर कहती है कि मैं प्रिय विरह में मर रही हूँ, फिर ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज होकर चमक रही है अर्थात् मुझे मार डालना चाहती है । हे बादल ? तुम्हीं लज्जा रखो, मेरी शैया सूनी है, प्रिय परदेश में है, ऐसे में मैं डर रही हूँ, अतः तुम धीरे-धीरे गरजन करो ।

राति सखी इणि ताल मइं काइज कुरली पंखि ।
उवै सरि, हूं घणि आपणइ, बिहूं न मेलि अंखि ।।32।।

शब्दार्थ – इणि = इस । मइं = में । काइ = क्यों । उवै = वह । हूँ = मैं । बिहुँ = दोनों ।

व्याख्या – हे सखि ? रात को इस सरोवर में किसी पक्षी ने कलरव किया । वह सरोवर में और मैं अपने घर में थी, हम दोनों ही की पूरी रात आँख नहीं लगी ।

ए सारस कहिजइ पसू, पखी केरा राव ।
उवै बोल्या सर ऊपरइ थाँ कीधो अणुराव ।।33।।

शब्दार्थ—कहिजइ = कहलाते हैं । पसू = पशु । केरा = के । राव = राजा । उवै = वे । अणुराव = अनुकरण ।

व्याख्या – सखि मारवणी से कहती है, हे मारवणी ये सारस यद्यपि पक्षियों के राजा कहलाते हैं, पर यह पशु ही हैं । ये दरद भरी वाणी में सरोवर पर बोलते रहे और तुमने उनकी वाणी का अनुकरण किया ।

विशेष—मारवणी अपना दुःख सारस में देखती है ।

राति जु सारस कुरलिया गुंजि रहे सब ताल ।
जिणकी जोणी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल ।।34।।

शब्दार्थ – जु = जो । कुटलिया = दर्द भरी आवाज में बोले । तिणका = उनका । हवाल = हाल ।

व्याख्या—रात्रि में जो सारस करुण आवाज में बोले, तो सब सरोवर गूँज उठे । भला जिनकी जोड़ी बिछुड़ गई है, उनकी क्या दशा होती होगी ।

**विशेष**—प्रेमी जोड़ी बिछुड़ने पर बड़ी बुरी दशा होती है। वाणी में करूण आ जाती है।

**कूंझड़ियाँ कलरव कियउ, घर पाछिले वणेहि।**
**सूती साजण संभरया द्रह भरिया नयणेहि ।।35।।**

शब्दार्थ—कूंझड़ियाँ = कूँझ पक्षी। वणेहि = वन में। संभरया = याद किया। द्रह = जल।

व्याख्या—कूंझ पक्षी ने घर के पीछे वाले वन में करूण क्रंदन किया। सोती हुई मारवणी को प्रियतम का स्मरण हो आया और उसके नयनों में आंसुओं का सरोवर भर आया।

विशेष—प्रिय स्मरण का चित्रण।

**कूंझड़ियाँ कुरलाइयाँ ओलइ बइसि करीर।**
**सारहली जिउ सल्लिहाँ सज्जण मंझ सरीर ।।36।।**

शब्दार्थ—ओलइ=ओट में। बइसि=बैठ कर। करीर=करील। सारहली =सार। जिऊँ=जैसे। सल्हियाँ=कष्ट हुआ।

व्याख्या—विरहणी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि कूँझ पक्षी करील वृक्ष की ओट में बैठ कर कुरलाए। जिसको सुनकर प्रियतम की स्मृति शरीर में सार की तरह सालने लगी।

विशेष—प्रियतम स्मृति का चित्रण

**मंझि समदा बींट घर, जल सूं जामोपत्त।**
**किणहीं अवगुण कूंझड़ी कुरली मंझिम रत्त ।।37।।**

शब्दार्थ—मंझि = मध्य में। बींट = पत्तों का। जामोऽपत्त = जन्मोपत्ति। रत्त = रात।

व्याख्या—कूंझ पक्षी की करूण आवाज को सुनकर मारवणी कह रही है, कि हे कूंझ! समुद्र के बीच टापू पर तेरा पत्तों का घर है, अर्थात् घोंसला है। जल में तू जन्मती व पनती है, तब कौन से बड़े अवगुण के कारण तू आधी रात को कूक रही है।

**कुंझड़ियाँ पलिअल कियउ, सुणी उपंखइ वाइ।**
**जआँ की जोड़ी बीछड़ी, स्याँ निसि नींद न आइ ।।38।।**

शब्दार्थ—कलिअल=करूण रव। कियउ = किया। उ = उनके। पंखइ = पंखों की। वाइ=वायु।

व्याख्या—कूंझ पक्षी ने करूण क्रंदन किया, उसे चैन नहीं पड़ रहा था, बार बार पंख फड़फड़ा रहा था। मैंने उसके पंखों की वायु सुनी। सच है, जिसकी जोड़ी बिछुड़ गई हो, उसको रात्रि में नींद नहीं आती है।

विशेष—जोड़ी वियुक्त होने की विफलता का मार्मिक वर्णन।

कुंझरणियाँ कलिअल कियउ, सरवर पइलइ तीर।
निसि भरि सज्जरण सल्लियाँ, नयणे बूहा नीर ॥39॥

शब्दार्थ—पइलइ = परले। निसि भरि = रात भर। सल्लियाँ = सालता रहा। बूहा = बहरा रहा।

व्याख्या—सरोवर के परले किनारे पर कूँझे करूण क्रंदन करती रही। विरहिणी को प्रियतम का अभाव रात भर सालता रहा, दुःख देता रहा और उसके नेत्रों से जलधारा बहती रही।

मारवणी मनि रंगि, वाइट तिणि आवी वहइ।
कुंझी एकण सगि, तालि चरंती दिट्ठियाँ ॥40॥

शब्दार्थ—मनिरंगी = प्रेम के रंग में रंगी। वाइट = मार्ग पर। तिणि = वह। आवी वहइ = आ निकली। तालि = सरोवर। चरंती = चुगते। दिट्ठियाँ = देखा।

व्याख्या – प्रेम रंग में रंगी मारवणी चलती-चलती उस मार्ग पर आ निकली जहां उसने कूँझों को सरोवर के किनारे एक साथ चुगा चुगते देखा। अर्थात् कूँझे अपने जोड़ों में प्रसन्न चित थी, मारवणी अकेली रह गई।

आडा डूंगर, दूरि घर, वणइ न जाणइ भत्त।
सज्जरण सन्दइ कारणइ हियउ हिलूसइ नित्त ॥41॥

शब्दार्थ—आडा = बाधा स्वरूप, वणइ = बनता। भत्त = भाँति। सन्दइ = से। हिलूसइ = लालायित।

व्याख्या—मारवणी प्रियतम से मिलना चाहती है, परन्तु विवश है। सोचती है, मार्ग में बड़े-बड़े पहाड़ है, घर भी बहुत दूर है। किसी भी भाँति जाना सम्भव नहीं और प्रियतम से मिलने के लिये हृदय नित्य ही लालायित रहता है।

कुंझा द्यउ नइ पखड़ी, थाकउ विनउ वहेसि।
सायर लंघी प्री मिलिउं प्रीमिफ पाछी देसि ॥42॥

शब्दार्थ – द्यउ = दे दो। थाकउ = तुम्हारे। वहेसि = वेष। सायर = सागर। लंघी = पार कर।

व्याख्या—मारवणी के मन में प्रियतम से मिलने की उत्कट इच्छा है। वह कूंझो से कहती है, हे कूंझो! तुम मुझे अपने पंख दे दो। मैं तुम्हाराभ्वाना बताऊँगी और सागर को लाँघकर प्रियतम से मिलकर लौटूँगी और तुम्हारे पंख तुम्हें वापस दे दूँगी।

म्हे कुरझाँ सरवर तणी पाँखाँ किणहिं न देसि।
मरिया सर देखी रहाँ, उड़ आवेरि वहेसि ॥43॥

शब्दार्थ = म्हे = हम । तरण = की । किनहीं = किसी को । देस = देती हैं । सर = सरोवर । आहोरि = आगे । वहेस = चली जाती हैं ।

व्याख्या — कूंझें उत्तर देती हुई कहती है कि हम सरोवर की कूंझें हैं, अपनी पंखे किसी को नहीं देती । हम तो जल से भरे सरोवर को देख रुक जाती हैं, वरना आगे उड़ जाती हैं । अर्थात् हम स्वयं को पंख देने की फुर्सत नहीं ।

उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँमहिमाँह ।
कुरझा एक संदेसड़उ ढोलानइ कहियाँह 44॥

शब्दार्थ — उपराठियाँ = पीठ देकर । साँमहियाँह = सामना करके । नइ = से । कहियाँह = कहना ।

व्याख्या — मारवणी ने कूंझों की आगे बढ़ने की बात सुनकर कहा, कुरझों । तुम उत्तर दिशा की तरफ पीठ करके तथा दक्षिण दिशा को सामने करके अर्थात् दक्षिण की ओर मुँह करके उड़ना और मेरा एक संदेश ढोला से कह देना, मेरा प्रियतम दक्षिण दिशा की तरफ है ।

**विशेष**—पक्षियों द्वारा सन्देश भेजना, यह परम्परा बहुत प्राचीन है ।

माणस हवा त मुख चवाँ, म्हे छाँ कूर्झड़ियाँह ।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँह ॥45॥

शब्दार्थ — हवाँ त = हों तो । चवाँ = कहे । छाँ = हैं । पाठविसु = भेजना है ।

व्याख्या – कुरझों ने उत्तर दिया । हे मारवणी, हम मनुष्य हो तो तुम्हारा संदेश मुख से कह देतीं, परन्तु हम तो कुरझें पक्षी हैं । अगर तुम अपना संदेश प्रियतम को भेजना ही चाहती हो तो हमारी पाँखों पर लिख दो ।

पाँखे पाँणी थाहरइ, जलि काजल गहिलाइ ।
सयणाँ तणी संदेसड़ा मुख वचने कहवाइ ॥46॥

शब्दार्थ – थाहरइ = तुम्हारे । काजल = स्याही । गहिलाइ = बह जायेगी । सयणाँ = साजन ।

व्याख्या – मारवणी फिर कहती है, कुरझों ! तुम्हारी पाँखों पर तो पानी पड़ता रहता है, लिखा सन्देश तो स्याही के गल जाने के साथ ही पानी में बह जायेगा । प्रिय का सन्देश तो मुख द्वारा ही कहलाया जा सकता है ।

तालि चरती कुंझड़ी, सर संधियउ गंमार ।
कोइक आखर मुनि बस्यउ, उड़ी पंख संभार ॥47॥

शब्दार्थ – तालि = सरोवर पर । चरती = चुगती । सर = शर । संधियउ = संधान किया । गमार = गवार । कोइक = कोइ । आखर = प्रेरणा । संभार = संवार कर ।

व्याख्या – कुरझें सरोवर का विचरण करती हुई चुगा चुग रही थीं कि किस गंवार शिकारी ने उन पर शर संधान किया। कुरंझों के मन में न जाने क्या प्रेरण उत्पन्न हुई कि वे पंख संवार कर उड़ गयीं।

**जिमि-जिमि सज्जण संभरइ, तिमि-तिमि लग्गई तीर।**
**पंख हुवइ तो जाइ मिलि, मनाँ बँधाँड़ धीर ॥48॥**

शब्दार्थ – जिम-जिम = ज्यों-ज्यों। संभरइ = स्मरण करती है। तिम-तिम = त्यों-त्यों। हुवइ = से। बँधाड़ाँ = बधाऊँ। धीर = धैर्य।

व्याख्या – मारवणी कहती है कि मैं ज्यों-ज्यों प्रिय का स्मरण करती हूं त्यों त्यों मेरे हृदय में मानों विरह-रूपी तीर लगता है। यदि मेरे पंख होते तो उडकर प्रियतम से मिल आती और मन को धीरज बँधाती।

**आडा डूंगर, बन घणा, खरा पियारा मित्त।**
**देह विधाता, पंखड़ी, मिलि-मिलि झावउं नित्त ॥49॥**

शब्दार्थ – घण = घने। खरा = अत्यन्त। मत्त = प्रियतम। नित्त = नित्य।

व्याख्या – मारवणी कह रही है कि हृदय में प्रियतम मिलन की अभिलाषा है। मार्ग में पर्वत हैं घनीभूत वन हैं, परन्तु मेरा प्रियतम मुझे अत्यन्त प्यारा है। हे विधाता ! मुझे कृपा कर पंख दे दे, जिससे मैं नित्य-प्रति ही प्रिय से मिल आया करूं।

**आडा डूंगरी, भुइ घणी, सज्जण रहइ विदेस।**
**माँगी ताँगी पंखुड़ी केती बार लहैस ॥50॥**

शब्दार्थ – भुइ = धरती। माँगी-ताँगी = माँगी हुई। केती = कितनी। लहेस = मिलेंगी।

व्याख्या – मारवणी कहती है कि प्रिय-मिलन के मार्ग में बाधाएँ बहुत हैं। मार्ग में पर्वत हैं, मार्ग बहुत लम्बा है, साजन विदेश में रहते हैं। इस स्थिति में ये उधार की माँगी हुई पाँखें कब तक और कितनी बार साथ देंगी। पाँखे माँगने की व्यर्थता मारवणी समझ जाती है।

**पाँखड़ियाँ ई किउं नहीं दैव अवाड़ू ज्याँह।**
**चकवी कइ हइ पंखुड़ी, रयडि न मिलेउ त्याँह ॥51॥**

शब्दार्थ – किउं नहीं = कुछ नहीं। दैव = भाग्य। अवाड़ू = विपरीत। कइ = के। हइ = हैं। त्यांह = उसका भी।

व्याख्या—मारवणी फिर कहती है कि जिनका भाग्य विपरीत है, उनके लिए पंख भी कुछ नहीं कर पाते। चकवी के पंख हैं, परन्तु वह भी रात्रि में प्रिय-वियोग में रहती है वह चकवे से उड़ कर नहीं मिल पाती है।

विशेष – मारवणी भाग्य पर भरोसा करती है। अब तो भाग्य में लिखा होगा, तब ही मिलन होगा।

**आडा भुइं घणी, तियाँ मिलीजइ एम।**
**मनिहूँ खिणहि न मेल्हियइ, लकवी दिणियर जेम ।।52।।**

**शब्दार्थ**—मुईं = धरती। तियाँ = उनसे। एन = इस प्रकार। मनिहूँ = मन से। खिणहि = क्षण को। न = मत। मेल्हियइ = अलग करने। दिणियर = सूर्य। जेम = जैसे।

**व्याख्या**—मारवणी फिर कहती है कि प्रियतम मिलन का मार्ग लम्बा है, रास्ते में बाधा स्वरूप पर्वत हैं, प्रियतम को एक क्षण के लिए भी मन से दूर मत करो, जैसे चकवी सूर्य को नहीं करती है। अब तो प्रियतम से तेसे ही मिला जा सकता है।

**विशेष**—प्रिय मिलन हेतु मानसिक मिलन ही सर्वोत्कृष्ट माध्यम है।

**ज्यूं ए डूंगर संमुहा, त्यं जई सज्जण हुंति।**
**चंपावाड़ी भमर ज्यउं, नयण नगाई रहंति ।।53।।**

**शब्दार्थ**—समुहा = सामने। हुंति = होते। जई = जो। चंपावाडो = चंपा वृक्ष के बगीचे। भमर = भ्रमर। रहंति = रहती।

**व्याख्या**—मारवणी कहती है, जैसे यह पर्वत मेरे सामने दिखाई देते हैं, वैसे अगर मेरे प्रियतम मेरे सामने होते तो जैसे भ्रमर चम्पा के उपवन की ओर दृष्टि लगाये रहता है, मैं भी प्रियतम पर नयन लगाये रहती।

**जिणि देसे सज्जण बसइ, तिणि दिसि वज्जउ वाउ।**
**उआं लगे मो लग्गसी, ऊ ही लाख पसाउ ।।54।।**

**शब्दार्थ**—वसइ = रहते हैं। जिणि = उस। वज्जउ = बहो। वाउ = वायु। ऊआं = उन्हें। ऊ = वह। लाख पसाउ = बड़ा उपहार।

**व्याख्या**—मारवणी वायु से निवेदन कर रही है कि हे वायु! जिस देश में मेरे साजन निवास करते हैं, तुम उस दिशा में बह कर जाओ। तुम उनका स्पर्श कर मुझे छुओ, वही मेरे लिए लाख पसाव होगा।

**विशेष**—प्रियतम हेतु मारवाणी का रोम-रोम प्यासा है। प्रियतम मिलन में अनेक बाधाएँ हैं। अन्त में इसी से सन्तोष कि उसे स्पर्श सुख, गन्ध सुख ही मिल जाये।

## मारवणी का सन्देश

**नरवर देश सुहाँमणउ, जइ जाणउ पहियाह।**
**मारू तणा संलेसड़ा, ढोलइनूं कहियाह ।।1।।**

**शब्दार्थ**—सुहामणउ = सुहावना। जइ = जो। पहियाह = पथिक। तणा = का। कहियाह = कहना।

**व्याख्या**—मारवणी कहती है, हे पथिक! नरवर देश बहुत सुहावना है, जो तुम वहाँ जाओ तो मारवणी का सन्देश ढोला से कह देना।

**ढाढ़ी एक संदेसड़उ, प्रीतम कहिया जाइ ।**
**सा धण बलि कुइला भई, भसम ढढोलिसि आइ ॥2॥**

**शब्दार्थ**—सा = वह । धण = स्त्री । कुइला = कोयला । भसम = भस्म । ढ़िढोलिसि = ढूँढ़ लो ।

**व्याख्या**—मारवणी कहती है, हे ढाढी ! जाकर प्रियतम से एक सन्देश यह कहना कि तुम्हारी प्रेयसी विरह में जल कर कोयला हो गई है, अब आकर उसकी भस्म तो ढूंढ लो ।

**ढाढ़ी जे प्रीतम मिलइ, यूं कहि दाखवियाह ।**
**पंजर नहि छइ प्राँणियउ, थाँ दिस झल रहियाह ॥3॥**

**शब्दार्थ**—दाखवियाह = कहना । पंजर = शरीर । प्राणियंउ = प्राण । थाँ = तुम्हारी । दिस = ओर । झल = लौ । रहिहास = है ।

**व्याख्या**—हे ढाढी ! यदि प्रियतम मिलें, तो यह कहना कि विरह के कारण मारवणी के तन में प्राण नहीं है, केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर जल रही है अर्थात् वह मरणासन्न अवस्था में है, तुमसे मिलने हेतु किसी प्रकार जी रही है ।

**पंथि एक संदेसड़उ, भल माणसइ भक्ख ।**
**आतम तुम पासइ अछइ, ओलग रूड़ा रक्ख ॥4॥**

**शब्दार्थ**—भल माणसनइ = भले मानव को । भक्ख = कहना । आतम = आत्मा । अछइ = है । ओलग = दूर । रूड़ा = भले ही ।

**व्याख्या**—मारवणी कह रही है, हे पथिक ! एक सन्देश उस (ढोला) भले मानस से जाकर कहना कि मारवणी की आत्मा तो तुम्हारे पास ही है, उसके शरीर को भले ही तुम दूर रखो ।

**ढाढ़ी जे साहिबा मिलइ, यूं दाखविया जाइ ।**
**अक्खाँ सीप विकासियाँ, स्वाति ज बरसउ आइ ॥5॥**

**शब्दार्थ**—साहिब = प्रियतम ढोला । यूँ = ऐसा । आँख्या = आँखें । स्वाति = नक्षत्र विशेष ।

**व्याख्या**—मारवणी कह रही है, हे ढाढी ! अगर प्रियतम मिले तो जाकर यूँ कहना कि मारवणी की आँखें पूर्णतः विकसित हो गई हैं (तुम्हारी प्रतीक्षा में खुल रही है) तुम स्वाति नक्षत्र के जल के रूप में आकर बरसो ।

**विशेष**—मारवणी मिलने के लिए आतुर है । विकसित सीप को स्वाति नक्षत्र जल की अपेक्षा रहती है, वैसे ही मारवणी के नेत्रों को ढोला के दर्शन की अपेक्षा है ।

**ढाढ़ी, जइ प्रीतम मिलइ, यूँ दाखविया जाइ ।**
**जीवण छत्र उपाडियउ, राज न वइसउ काइ ॥6॥**

शब्दार्थ—उपाडियउ = उठाया है। बइसउ = बैठते। काइ = क्यों।

व्याख्या—मारवणी फिर कहती है, हे ढाढी ! यदि प्रियतम मिलें तो जाकर इस प्रकार कहना–यौवन ने छत्र उठाया है, रे राजन् आकर उसकी छत्रछाया में क्यों नहीं बैठते अर्थात् मारवणी यौवनावस्था को प्राप्त है, आकर भोग करो।

**ढाढ़ी जइ साहिब मिलइ, यूं दाखविया जाइ।**
**जोवण कमल विकासियउ, भमर न वइसइ आइ ॥7॥**

शब्दार्थ—जोवण = यौवन। भमर = भ्रमर।

व्याख्या–मारवणी कहती है कि हे ढाढी ! यदि प्रियतम मिले तो जाकर यूँ कहना कि यौवन रूपी कमल पूर्णतः विकसित हो गया है। तुम भ्रमर की तरह आकर बैठते क्यों नहीं हो ? संयोग-सुख भोग हेतु आमन्त्रित करती है।

**पंथी, एक संदेसड़उ लग ढोलइ पैहच्चाइ।**
**सावज सकल तोडस्यइ, वैसासणइ न जाइ ॥8॥**

शब्दार्थ–लग = तक। पैहच्याइ = पहुँचाओ। सावज = पशु। संकल = साँकल बैसासणइ = विश्वास।

व्याख्या–मारवणी कहती है कि हे पथिक ! एक सन्देश ढोला तक पहुँचाना कि यौवन रूपी पशु शृंखला तोड़ रहा है मिलन के विश्वास में नहीं मिलेगा अर्थात् मिलन अवधि का विश्वास इसको नहीं, तुम आकर के ही मिलो तब ही सन्तोष होगा।

**पंथी एक संदेसड़उ लग ढोलहि पैहच्चाय।**
**जोबन जायइ प्राहुणउ, बेगइरऊ घर आय ॥9॥**

शब्दार्थ–प्राहुणउ = मेहमान। बेगइरऊ = शीघ्र।

व्याख्या – मारवणी फिर कहती है कि हे पथिक ! एक सन्देश ढोला तक पहुँचाना कि यौवन रूपी मेहमान घर आकर निराश लौटा जा रहा है। अतः शीघ्र घर आओ।

विशेष – मारवणी के यौवन को मिलन की उत्कंठा तीव्र है। यौवन के चल जाने के बाद तुम आये तो क्या आये।

**पंथी, एक संदेसड़ा, धरण बिललंती देह।**
**पगसू काढइ लीहटी, उर आँसूओं भरेइ ॥10॥**

शब्दार्थ—विललती = विलाप करती हुई। काढइ = खींचती है। लीहटी = लकीर।

व्याख्या – मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सन्देश भेजती है। उस समय वह धरती पर लकीर खींचती है और उसका हृदय आँसुओं से भर जाता है।

विशेष – विरह के अनुभाव का मार्मिक चित्रण है। ऐसा लगता है कि मारवणी बहुत कुछ कहना चाहती है परन्तु लज्जावश कुछ कह नहीं पाती है।

– – — –

# प्रश्नोत्तर-खण्ड

प्रश्न 1. समाज सुधारक के रूप में कबीर का मूल्यांकन कीजिए ?

अथवा

कबीर ने अपने काव्य के माध्यम से मध्यकालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विसंगतियों को दूर करने के प्रयत्नों का परिचय दीजिये ?

उत्तर – कबीर वैचारिक क्रांति के अग्रदूत थे और मध्यकाल के कवि थे। उन्होंने उस समय के समाज को और उसमें व्याप्त बुराइयों को ध्यान से देखा था। वे सत्य के पक्ष-पाती थे। आँख की देखी बात पर ही विश्वास करते थे। निर्भीक व्यक्तित्व था उनका और खरी-खरी सुनाया करते थे। राजा रंक को वे एक समान समझते थे। किसी से डरते नहीं थे। वे समाज की बुराइयों को दूर करना चाहते थे। एक ऐसा समाज वे चाहते थे, जो जाँति-पाँति से ऊपर उठा हो। मानव कल्याण की ओर अग्रसर हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म और समाज में फैली बुराइयों को गहराई से देखा और अपना आक्रोश व्यक्त किया।

(अ) समाज सुधारक—कबीर महान समाज सुधारक थे। समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था के वे कट्टर विरोधी थे। मूर्तिपूजा, रूढ़िवादिता, ऊँच-नीच की भावना आदि का उन्होंने जमकर विरोध किया। नाना प्रकार की बुराइयों को मिटाने की कोशिश की।

(i) आडम्बरों का विरोध – सामाजिक जीवन में व्याप्त दिखावे का विरोध किया। माला फेरना, छापे-तिलक लगाना, माँस खाना, घर छोड़ सन्यासी बनना, मूँड मूँडाना, रोजा रखना आदि का विरोध किया। उदाहरण माला फेरना –

**माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।**
**कर का कर का छोड़कर मनका मनका फेर।।**

× × ×

**पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।**
**ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।**

माँस खाना—**माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।**
**आँख देखि जो खात है, ते नर नरकहि जाय।।**

**मूँड-मूँडाना**—**मूँड मुड़ाये हरि मिले तो हर कोय लेइ मुडाय ।**
**बार बार के मुँडते भेड़ न बैंकुण्ठ जाय ।।**

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "मिथ्याडंबरों के प्रति प्रतिक्रिया कबीर का जन्म-जात गुण था । वे वही कहते थे, जिसे उनकी आत्मा सत्य-तत्व की कसौटी पर परख कर युक्ति संगत स्वीकार करें, किन्तु इसका तात्पर्य कदापि नहीं, कि वे हठवादी थे । वास्तव में सहज सत्य को सहज ढंग से वर्णन करने में कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते ।"

(iii) अहं का विरोध – अहं बुरी चीज है । कबीर ने इसका जमकर विरोध किया । अहं में व्यक्ति का जीवन विनाश की ओर बढ़ता है । अहं से सामाजिक और धार्मिक जीवन अशांतिपूर्ण हो जाता है –

**कबीरा गरब न कीजिये काल गहे कर केस ।**
**न जाने कित मारि हैं, क्या घर क्या परदेश ।।**

(ii) सत्य, दान और परोपकार का महत्व – कबीर सत्य के पक्षपाती थे । सत्य को उन्होंने सर्वोपरी स्थान दिया है । इसे उन्होंने जीवन में अपनाया था – तू कहता कागद की लेखी मैं कहता आँखिन देखी । सत्य भाषण की वजह से उनको जीवन में विरोध झेलना पडा । परन्तु सत्य के प्रबल समर्थक हैं –

**साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।**
**जाके हृदय साँच हैं, ताके हृदय आप ।।**

इसी भाँति लोगों को समझाया कि परोपकार ही पुण्य है । परोपकार से बढ़कर पुण्य मार्ग नहीं है । अगर कोई हमारा बुरा करता है फिर भी हमें उसका भला ही करना चाहिए । उसका फल अच्छा ही होगा –

**जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।**
**तोंहि फूल के फूल है, वाको है त्रिशूल ।।**

ऐसे ही कबीर ने दान की महिमा बताई । शक्ति अनुसार दान करना चाहिए । दान दिया हुआ कभी व्यर्थ नहीं जाता है ।

(आ) धार्मिक सुधार—कबीर ने स्व-काल में प्रचलित प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदायों के बाह्यचारों के प्रति खंडनात्मक दृष्टिकोण अपनाकर एवं सहज धर्म की प्रतिस्थापना करके समाज सुधार की चेष्टा की ।

(i) मूर्तिपूजा का विरोध – कबीर ने मूर्तिपूजा का डटकर विरोध किया । हिन्दू-मुस्लिम दोनों को आड़े हाथों लिया –

**पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहार ।**
**तातें तो चाकि भली, पीस खय संसार ।।**
**काकर पाथर जोरि कर, मसजिद लई चुनाय ।**
**ता चढ़ि मुला बांग दे, का बहरा हुआ खुदाय ।।**

(ii) **व्रत, रोजा और तीर्थ यात्रा आदि का विरोध** – कबीर ने इन सब का भयंकर विरोध किया है। धर्माधिकारियों को बुरी तरह फटकारा है –

**रोजा रखना**—दिन में रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह गन्दगी, कैसे खुशी खुदाय ॥
× × ×
बकरी पाती खात है, ताकि काढ़त खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल ॥

**तीर्थयात्रा**—ना मैं मंदिर ना मैं मस्जिद, ना यावै कैलास में।
मोकों कहां ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में ॥
कस्तूरी कुण्डली बसे, मृग ढूँढे बन माँही।
एसे घर घर राम है, दुनियाँ देखत नाही ॥

**बनावटी सन्यासी का विरोध**—तन तो जोगी सब करें, मन को बिरला कोय।
सहजे सब विधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥

(iii) **विषय-वासना का विरोध**—विषय-वासनाओं में फँसे मानव को उबारने का उपदेश कबीर ने दिया है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि से दूर रहने को कहा है। नारी को भी माया का रूप मानकर विरोध किया है –

नारी की झाँई पड़त अंधा होत भुजंग।
कबीरा उनकी क्या गति, जो नारी के संग ॥

**तृष्णा की बुराई**—माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया शरीर।
आसा तष्णां ना मुई, कहि गया दास कबीर ॥

(iv) **जात-पाँत का विरोध** – धर्म के शिकंजे में जकड़ी जाति व्यवस्था की कबीर ने खिल्ली उड़ाई। उन्होंने एक ही 'मानव जाति' को माना। "जात-पांत पूछो न कोई। हरि को भजे सो हरि का होय।" यह उनका मूल मन्त्र था। हिन्दू मुस्लिम दोनों को भला बुरा कहा। मुसलमानों को कहा –

जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।

तो ब्राह्मणों से कहा—जो तू ब्राह्मन ब्राह्मनी जाया, और राह से क्यों ना आया।

(v) **एकेश्वरवाद के पक्षपाती** – नाना धर्म सम्प्रदायों को फटकारा और यह उपदेश दिया कि ब्रह्म एक है, पर सारा जगत उसी का रूप है। जात-पांत मानव द्वारा निर्मित है –

एक जोति से सब उतपन्ना, का बामन का सूद्रा।

(vi) **प्रेम का महत्व** – प्रेम तत्व पर कबीर ने बहुत जोर दिया। इसी के बल पर ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर के प्रति सच्चा प्रेम भव-सागर से पार

उतार देगा। प्रेम कहीं बिकता नहीं है। इसे तो अपने त्याग से प्राप्त कर सकते हैं –

प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाइ।
राजा प्रजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाइ।

कबीर ने मन को शुद्ध रखने, परहित जीवन बिताना, झूठ न बोलना आदि का भी उपदेश दिया। ऐसे थे कबीर। आत्मा से क्रान्तिकारी। राजा-रंक सबको बराबर समझा। समाज, धर्म में व्याप्त बुराइयों का खुले रूप से विरोध किया। किसी के सामने झुके नहीं। अपने समय के प्रचलित विविध धर्म-साधनाओं के बाह्याचारों और अन्ध-विश्वासों का खण्डन किया और जिस मानवता प्रधान सहज धर्म की स्थापना की है, उसके संदर्भ में डॉ. पारसनाथ तिवारी का मत उचित ही है – "सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्ममतापूर्वक सभी पाखण्डों पर प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन सामन्तों तथा शासकों को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कही हैं, जिससे भौतिक ऐश्वर्यों पर आधारित उनके झूठे अभिमान का मूलोच्छेद हो।"

प्रश्न 2. भक्तिकाल की ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए और ज्ञानाश्रयी कवियों के महत्त्व को सिद्ध कीजिए।

अथवा

सन्त-साहित्य में कबीर के महत्त्व को समझाइए।

उत्तर—ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म विकृत होकर मन्त्रवादी अवतारवादी-सा बन गया था। समाज में अन्धविश्वास व्याप्त था। ब्राह्मणों का पाखण्ड व आडम्बर बढ़ने लग गया था। समाज पथभ्रष्ट हो गया था। कोई मार्गदर्शक, धार्मिक पुरुष था ही नहीं जिसके नियन्त्रण में समाज आगे बढ़ सके। ऐसे समय में सन्तों की परम्परा का श्री गणेश हुआ। प्रारम्भ नाथ सम्प्रदाय से हुआ। परन्तु वास्तविक समाज सुधार व क्रांति का कार्य भक्तिकाल की निर्गुण शाखा ने किया। इस शाखा के प्रमुख व प्रबल कवि कबीर हुए। कबीर ने अलख सा जगा दिया। भारतीय जनमानस में कबीर छा गये।

कबीर ने प्राचीन धर्म-मत, जो सन्त-मत में विकसित विचारधारा थी, उसको तराशा, सुधारा और उसे दिशा दी। कबीर पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव भी पड़ा। उन्होंने सत्य का पक्ष लिया और अपने मत को गति दी। कबीर ने तत्कालीन समस्त बाह्याडम्बरों की निन्दा कर सत्य का वास्तविक रूप सामने रखा। ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रारम्भ कबीर से हुआ। इससे पहले भी गोरख, जालंधर, कणुरीनाथ, चटपटनाथ आदि सन्त हुए, परन्तु जितना बल कबीर की वाणी में था अन्य सन्तों की वाणी में न था। कबीर ने जनवाणी में काव्य लिखकर जनता को जगाया था।

कबीर-काल, सन्त मत का प्रौढ़ काल था। अनेक सन्त कवि इस काल में हुए दादू, सुन्दरदास, मलूकदास, रैदास, गुरुनानक, पलटूदास, मीर साहब, दयाबाई, सहजो बाई आदि। इन सबने सामाजिक आडम्बरों का विरोध किया और एकेश्वर-वाद की स्थापना की। इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया मूर्ति-पूजा बहुदेववाद का विरोध किया। संकीर्ण धर्मशास्त्र इन्हें पसन्द न थे।

सन्त कवियों ने काव्य रचना की परन्तु उसका उद्देश्य यह न था। वे तो सहज भाव से अपने मत के प्रचार हेतु करते थे। यह भावुक थे, उनका हृदय सरस था। काव्यगत विशिष्टताएँ अनायास ही इनके काव्य में आ जाती थी।

सभी सन्त अक्खड़ और फक्कड़ थे। करीब-करीब सब निम्न जाति के थे। इसलिए इन्होंने धार्मिक और सामाजिक विषमताओं का निर्भतापूर्वक खण्डन किया। ये मानवता के प्रेमी थे। इनकी दृष्टि में प्रत्येक मानव, समाज और धर्म का अधिकारी था। "हरि को भजे सो हरि का होय" इनका मूलमन्त्र था। समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जात-पांत का इन्होंने खण्डन किया। वाणी की कठोरता को इन्होंने अपनाया, इसका कारण यह था कि धर्म के ठेकेदारों से इन्हें टक्कर लेनी पड़ी थी। इसलिए कबीर को तो काशी छोड़ देना पड़ा था।

इस धारा के प्रमुख व प्रवर्त्तक कबीर माने जाते हैं, परन्तु इनसे पहले भी इस धारा के कवियों का उल्लेख मिलता है। इनमें मुख्य हैं—सोमेश्वर, चक्रधर महाराज, नामदेव, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई आदि। नामदेव ने हिन्दी में भी लिखा, उतर-भारत का भ्रमण भी किया। निष्कर्ष रूप में कबीर को ही इस मत का प्रवर्त्तक मानते हैं। सन्त-काव्य की जो प्रमुख विशेषताएँ स्वीकार की जाती हैं, वे निम्न-लिखित हैं—

(1) निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास—सभी सन्त कवियों ने साकार ईश्वर के स्थान पर निराकार ब्रह्म की सत्ता में विश्वास किया है। कवि ने निराकार राम की उपासना पर बल दिया है—

निर्गुन राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।।

कबीर के राम सर्वत्र व्याप्त है, वह घट-घट में निवास करता है और वह परम तत्व पुष्प-गंध से भी पतला है, उसका कोई रूप नहीं है—

कस्तूरी कुण्डली वसै, मृग ढूँढे बन मांहि।
तैसे ही घट-घट राम है, दुनियां देखे नाँहि।
× × ×
जाके मुँह माथा नहीं, नहीं रूप-कुरूप।
पुहप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप।

(2) **बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध** – सन्त कवियों ने अवतार का विरोध किया है। चरनदास का सिर तो अवतारी राम के आगे झुकता ही नहीं। कबीर ने भी इसका विरोध किया—

**ना जसरथ घर औतारि आया।**
**ना लंका का राव सताया।**

उनका तर्क है कि कर्त्ता, कर्मों से परे है। उसका जन्म नहीं होता—

**साधो करता कर्म ते न्यारा।**
**आवै न जाइ मरै नहिं जनमै, ताका करो विचार।**

(3) **गुरु का महत्व**—सभी सन्त कवियों ने गुरु की महत्ता गाई है। संसार में तो गुरु सबसे बढ़कर है ही परन्तु ईश्वर से भी बड़ा गुरु है। कबीर ने कहा है—

**गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाइ।**
**बलिहारी गुरु आपने, गोबिन्द दियो मिलाइ।**

(4) **जात-पांत का विरोध**—सिद्ध और नाथों की भांति सन्तों ने भी जात-पाँत का विरोध किया है। कारण यह है कि सभी सन्त निम्न जाति में उत्पन्न हुए थे। ये मानव जाति को ही मानते थे। कबीर ने कहा है—

**जात-पात पूछे नहिं कोई।**
**हरि को भजे सो हरि का होई।**

कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों को फटकारा है –

**जो तू ब्राह्मन ब्राह्मनी जाया।**
**और राह है क्यों न आया।**

× ×

**जो तूँ तुरक तुरकिनी जाया।**
**तो भीतरि खतना क्यों न कराया।**

(5) **रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध**—सन्त कवियों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों व आडम्बरों का जैसे—मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, व्रत-रोजा रखना, नमाज पढ़ना, छापा-तिलक लगाना, बलि आदि का भयकर विरोध किया—

(1) काँकर-पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

(2) **पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूँजू पहार।**
**ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार॥**

(3) **पोथी पढ़-पढ़ जग मुवा, पंडित हुआ न कोय।**
**ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े, सो पण्डित होय॥**

(4) **कबीरा माला काठ की, कहि समझावै तोहि।**
**मन न फिरावै आपणाँ, कहा फिरावै मोहि॥**

(6) **नाम स्मरण पर बल**—सभी सन्तों ने ईश्वर के नाम-स्मरण पर बल दिया है। कलियुग में इसी से उद्धार हो सकता है। कबीर ने कहा है—

**राम नाम के पंठतरे, देवे को कछु नाहि।**
**क्या लै गुरु संतोषिए, होंस रही मन माहि ।।**

(7) **विरह-वर्णन** – सन्त कवियों ने परमात्मा को पति व आत्मा को पत्नी रूप माना है। आत्मा के प्रियतम से बिछुड़ने का बहुत वर्णन किया है। कबीर लिखते हैं –

**विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।**
**एक शबद कहि पीव का, कबरे मिलेंगे आइ ।।**

(8) **रहस्यवाद** – सन्तों में अलौकिक प्रेम की व्यंजना मिलती है। ब्रह्म को परम सत्ता मानते हैं, जगत को उसी का रूप मानते हैं। आत्मा ब्रह्म से निकल कर आती है, पुनः उसी में व्याप्त हो जाती है –

**जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।**
**फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तत कहो गियानी।**

योगात्मक रहस्यवाद को अपनाया। नाथ सम्प्रदाय की योग पद्धति का पूरा चित्रण सन्त-काव्य में किया गया है। इंगला-पिंगला, सहस्रदल कमल, नाद, त्रिकुटी, दसवाँ द्वारा आदि प्रतीकों का वर्णन भी खूब मिलता है।

(9) **नारी के प्रति दृष्टिकोण** – नारी की सन्त कवियों ने निन्दा की है। नारी को माता का रूप मानकर साधना में बाधक माना है। नारी की छाया तक पसन्द नहीं करते हैं। कबीर ने कहा है –

**नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।**
**कबिरा उनकी क्या गति, जो नित नारी के संग ।।**

इतना होने के बाद भी कबीर ने पतिव्रता नारियों की प्रशंसा की है –

**पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरुप।**
**पतिव्रता के रूप पर बारौं कोटि सरुप ।।**

इसके अतिरिक्त सन्त-काव्य की विशेषताओं के रूप में सधुक्कड़ी भाँति, मुक्तक शैली और प्रतीकात्मकता आदि को देखा जा सकता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सन्त काव्य की प्रायः सभी विशेषतायें कबीर-काव्य में मिल जाती है।

**प्रश्न 3. जायसी की प्रेम-भावना पर एक निबन्ध लिखिए।**

**अथवा**

**जायसी की प्रेम-भावना की विशेषतायें बताइये ?**

**उत्तर** – प्रेम जीवन की शाश्वत भावना है। प्रेम के लौकिक और पारलौकिक दो भेद किये जा सकते हैं। लौकिक प्रेम पति-पत्नी के मध्य दाम्पत्य के रूप में देखा

जा सकता है। पारलौकिक प्रेम उस आध्यात्मिक प्रेम को कहते हैं जिसमें साधक के हृदय में अपने इष्टदेव परमात्मा के प्रति होता है। पद्मावत नामक काव्य में जायसी ने लौकिक और अलौकिक दोनों का निरूपण किया है। पद्मावत में चित्रित प्रेमी की निम्न विशेषता देखी जा सकती है—

(1) आध्यात्मिकता—जायसी का यह प्रेम पारलौकिक है। परमात्मा के प्रति यह प्रेम आकाश से भी ऊँचा है—

प्रेम अदिष्ट गगन ते ऊँचा।
× × ×
प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा।
सो पै चढ़े सीस सौं चढ़ा॥

(2) प्रतीकात्मकता—यहाँ राजा रत्नसेन व पद्मावती साधारण पुरुष-स्त्री नहीं हैं। रत्नसेन आत्मा व पद्मावती परमात्मा के प्रतीक हैं। साधक रत्नसेन, पद्मावती रूपी परमात्मा का जब रूप वर्णन सुनता है तो प्रेम सागर में डूब बेसुध जाता है—

हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मदनपुर आइहुँ कहाँ॥
× × ×
रवि ससि नखत दीन्ह ओहि जोति।

(3) अनन्य भाव—सच्चा प्रेमी वही, जो अपने प्रेमी के सिवाय किसी अन्य को देखना भी पसन्द नहीं करता है। रत्नसेन पद्मावती दोनों में यह गुण देखा जा सकता है। जब पार्वती अप्सरा का रूप धर रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेने आती है, तब स्पष्ट कर देता है कि पद्मावती के अलावा मुझे किसी से कुछ भी नहीं चाहिए—

भलेहि रंग तोहि आछरि राता।
मोहि दोसरें सौं भाव न बाता॥

(4) दृढ़ एवं निर्भयता—जब तक प्रेमी अपने प्रियतम मिलन हेतु निर्भय हो दृढ़ निश्चिय न कर ले, तक तब प्रेम-मिलन असम्भव है। राजा रत्नसेन में यह गुण है। पद्मावत को पाने के लिए वह दृढ़ संकल्प है, अपना राज वैभव छोड़ कठिन पथ पर बढ़ जाता है, वह जहाँ भी होगी प्राप्त करेगा—

सप्त पतार खोजि जस काढ़े वेद गरंथ,
सात सरस चढ़ि धावौं पद्मावति जेहि पंथ॥

(5) कष्ट एवं पीड़ा की अधिकता—प्रेमी का मार्ग सहज, सरल नहीं होता है। नाना कष्ट सहन करने के बाद ही अपने प्रिय के दर्शन होते हैं। रत्नसेन ने पद्मावती को पाने के लिए क्या नहीं किया। प्रेम-पथ दुरुह एवं दुर्गम है, वहाँ सच्चा प्रेमी ही जा सकता हैं—

कठिन प्रेम सिर देई तौ छाजा।

विघ्न-बाधाओं की भी प्रेम-मार्ग में कमी नहीं है—

एहि आगे परबत की पाटी।
विषय पहार अगम सुठि घाटी॥
बिच-बिच खोह नदी औ नारा।
ठांवहि ठाँव उठहिं बटवारा॥

(6) **करुणा की प्रधानता**—कष्टप्रद प्रेम मार्ग मे प्रेमी को प्राप्त करने हेतु आगे बढ़ता रहता है। उसकी आँखों में आँसू बहते रहते हैं। पद्मावती के रूप सौन्दर्य को सुन बेहोश रत्नसेन को जब होश आता है, तो बुरी तरह से रोने लग जाता है—

तस रोवँ जस जरै जिउ, गरै रकत औ माँसु।
रोवँ सब रोवँहि, सोत सोत भरि आंसु॥

(7) **उज्ज्वल प्रेम**—इस प्रेम-पथ पर चलने वाले प्रेमी एवं साधक की सम्पूर्ण वासनायें शान्त हो जाती है। सांसरिक मोह-माया से उसे कुछ भी लेना-देना नहीं होता है। उसका प्रेम तो निर्मल होता है। प्रेम की अग्नि में जलकर साधक का हृदय स्वर्ण के समान खरा हो जाता है—

निस्वै प्रेम पीर यह जागा।
कसत कसौटी कंचन लागा॥

(8) **फारसी शैली का प्रभाव**—जायसी के प्रेम-निरूपण पर फारसी की प्रेम-पद्धति का प्रभाव है। विरह में रक्त के आँसू बहाना, उसके मांस का गलना, हड्डियों का सूख जाना, विरह में मांस का भून कर कीमा बनाना आदि। इस प्रकार के वर्णन भारतीय विरह में नहीं देखे जा सकते—

तस रोवै जस जरै जिउ गजै रकत औ आँसू।
× × ×
हाड़ भए झुरि किंगरी, नसैं भई सब ताँति॥

जायसी के प्रेम-निरूपण में वेदना, रुदन, पीड़ा, कष्ट-सहिष्णु, ताप, वियोग आदि का आधिक्य होते हुए भी आत्म-समर्पण की गरिमा है। आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों ही दृष्टि से जायसी का प्रेम-निरूपण उच्चकोटि का है।

**प्रश्न 4. जायसी द्वारा वर्णित नागमती विरह-वर्णन का विवेचन कीजिए।**

**अथवा**

**जायसी विरह-वर्णन की विशेषताओं का सोदाहरण वर्णन कीजिए।**

**उत्तर**—पद्मावती में जायसी ने 'नागमती विरह-वर्णन' अद्वितीय रूप में किया है। यह विरह-वर्णन, विरह-काव्य का मानक रूप में जाना जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि जायसी को नारी हृदय प्राप्त था। नारी के कोमल भावों का विशद चित्रण किया गया है। कहा भी गया है "नागमती के विरह-निरूपण में जितनी

गहनता, आकुलता, मार्मिकता, प्रौढ़ता, प्रांजलता, प्रभाविष्णुता, सजीवता, स्वाभाविकता एवं सुकुमारता दिखाई देती है उतनी अन्यत्र नहीं मिलती।" इसी कारण नागमती का विरह वर्णन विश्व की अनुपम कृति के रूप में विख्यात है। इस विरह-वर्णन की निम्न विशेषतायें देखी जा सकती है—

(1) **प्रेम-पीड़ा की बहुलता**—नागमती का रत्नसेन से अत्यधिक प्रेम है। उसके हृदय में अन्य के लिए स्थान नहीं है, वह दिन-रात रत्नसेन के लिए तड़फती है। वह रत्नसेन की पत्नी है, उसे यह कतई सहन नहीं होता कि प्रियतम किसी अन्य का होकर रहे। वह वियोग में अपने भाग्य को कोसती है—

**सारस जोरी किमी हरी, मारि गएउ किन खग्गि।**
**झुरि झुरि पाँजरि धनि भई, विरह कै लागि अग्गि।**

(2) **विरह-ताप की अधिकता**—नागमती का हृदय प्रिय वियोग में जल रहा है। जायसी ने यह ताप-वर्णन फारसी शैली से प्रभावित होकर भी किया है। प्रिय वियोग में वह बौरा जाती है। पपीहा उसके विरह को और भड़का देता है। उसके प्राण-पखेरू उड़ने ही वाले हैं। विरह ताप का उदाहरण देखिए—

**जेहि पंखी कहँ अढ़बौ, कहि सो विरह कै बात।**
**सोई पँखी जाइ उहि, तरिवर होइ निपात॥**

विरह दग्ध नागमती के सन्देश को ले जाने वाले पक्षियों के बैठने मात्र से पेड़ निपात हो जाते हैं।

(3) **शरीर की दयनीय स्थिति**—पति वियोग में नागमती की दयनीय दशा हो जाती है। वह प्रिय इन्तजार में कृशकाय हो जाती है। प्रिय आने की अवधि समाप्त होती जा रही है परन्तु प्रिय नहीं आ रहे हैं। उसके धैर्य का बांध टूटता जाता है। वह विवश हो पक्षियों से पूछती है कि प्रिय कहां हैं—

**बरसि दिवस धनि रोइ कै हारि परी चित झाँखि।**
**मानुस घर-घर पूँछि कै पूँछे निसरि पांखि॥**

विरह में उसका शरीर गल गया है, शरीर में न मांस ही रहा है और न रक्त ही, केवल हड्डियां शेष रह गई हैं हड्डियां भी सूखकर शंख हो गई हैं—

**"रकत ढरा आँसू गरा हाड़ भए सब सँख॥"**

(4) **विरहिण का उज्ज्वल चरित्र**—नागमती विरह-वर्णन में नागमती को विषय-वासना की अभिलाषा नहीं है। उसका चरित्र शुचिता, पवित्रता एवं सात्विकता आदि आदर्श गुणों का वाहक है, क्योंकि विरह आग में तप कर नागमती खरे स्वर्ण के समान हो जाती है। उसका प्रियतम से सच्चा प्रेम है। वह रत्नसेन के दर्शनों की प्यासी है—

**मोंहि भोग सों काज न वारी।**
**सौंह दीठि को चाहनहारी॥**

(5) **साधारण नारी रूप में चित्रण** – नागमती चित्तौड़ की रानी है परन्तु जायसी ने उसे साधारण नारी के रूप में चित्रित किया है। नाना प्रकार के वैभव से दूर रख कर ग्रामीण विरहिणी के रूप में उसे स्थापित किया। वर्षाकाल निकट है, नागमती को यह चिन्ता है कि प्रिय के बिना मेरे घर के छप्पर को कौन तैयार करेगा। वह अनाथ, बेसहाया विरहिणी के रूप में कह उठती है –

तपै लागि अब जेठ असाढ़ी।
मैं मोकहँ छाजनि गाढ़।
बँध नाहिं औ कँध न कोई।
बात न आव कहौ केहि रोई।
× × ×
बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ।
तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहां॥

(6) **फारसी प्रभाव** – फारसी पद्धति के अनुसार विरह को अत्यधिक प्रभावी बनाने के लिए खून के आंसू, मांस का गलना, हड्डियों का सूखकर शंख बन जाना आदि वर्णन किये हैं। जायसी के पद्मावत में नागमती विरह-वर्णन में इस प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं –

कुहकि कुहकि जसि कोइलि रोइ।
रकत आँसु घुँघलि बज बोई।
× × ×
रकत क आँसू परे भुँप टूटी।
रेंगि चली जनु व बीर बहूटी॥

(7) **ऊहात्मक वर्णन** – विरह-वर्णन में जायसी ने बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है। कहीं-कहीं तो पढ़कर हँसी आ जाती है। नागमती भौंरा व कौआ को यह कह रही है कि तुम प्रिय से जाकर कहना कि नागमती विरह आग में जलकर मर गई उसी के धुआं से हम काले हो गये हैं।

पिय सौं कहेहु सँदेसड़ा, ऐ भँवरा हे काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआं हम लाग॥
विरह में हड्डिआँ किंगरी नसें ताँत बन गई है—
हाड भए सब किंगरी नसें भई सब ताँति।

(8) **काम दशाओं का वर्णन** – जायसी ने पद्मावत में विभिन्न काम दशाओं का वर्णन किया है। भारतीय काम शास्त्र में ये दशाएँ दस मानी गई हैं – अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण आदि। इन सब का जायसी ने चित्रण किया है –

**अभिलाषा—यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाउ ।**
**मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरैं जहाँ पाउ ।।**
**स्मृति—एहि मास उपजै रस मूलू । तूँ सों भँवर मोर जोबन फूलू ।।**
**मरण—रकत ढरा माँसू गरा हाड भए सब संख ।**
**धनि सारस होइ ररि मुई आई समेटहु पंख ।।**

फारसी में विरह की मानसिक दशाएँ नौ मानी गई है—आहे सर्दी, रंगे जर्दी, चश्मेतर, इन्तजारी, बेकरारी, बेसब्री, कम खुर्दनो, कम गुफ्तनों, नींदे हराम। इन दशाओं का जायसी ने अति सुन्दर चित्रण किया है।

जायसी का विरह वर्णन अद्वितीय है। नागमति का विरह झोंपड़ी से लेकर महल तक की पीड़ा को समेटे हुए है। जड़-चेतन इस विरह से प्रभावित है।

**प्रश्न 1.** तुलसी समन्वयवादी कवि थे, उनका सारा काव्य समन्वय का रूप है। इस कथन की युक्ति युक्त विवेचना कीजिये।

**उत्तर**—गौतम बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोक नायक तुलसी माना जाता है। तुलसी के समय भारतीय समाज, धर्म बिखरा पड़ा था। मुगल साम्राज्य की छत्र छाया में भारतीयों की स्थिति खास अच्छी न थी। नाना भेद-भावों से समाज ग्रस्त था। ऐसे समय में तुलसी का उदय हुआ। तुलसी ने लोक पक्ष की रक्षा की इसीलिए जन-नायक का पद उन्हें मिला। उनके ऐसे प्रयास के कारण ही उन्हें समन्वयवादी कवि कहा जाता है। उनके काव्य में लोक और शास्त्र का, भक्ति और ज्ञान का, निर्गुन और सगुन का, काव्य और दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। उनकी समन्वय भावना धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक सभी क्षेत्रों में व्यक्त हुई है।

(1) **लोक और शास्त्र का समन्वय**—जहाँ तुलसी काव्य में नाना पुराणों का महत्व बताया है, वहीं लोक पक्ष की विस्तृत व्याख्या की है और उसका पक्ष लिया है। लोक आदर्शों व परम्पराओं को शास्त्र सम्मत बताया है।

(2) **भक्ति और ज्ञान का समन्वय**—तुलसी भक्त कवि थे अतः उनका झुकाव भक्ति की ओर था परन्तु भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी ज्ञान मार्गियों को अप्रसन्न नहीं किया। अपितु उनके मार्ग को तलवार की धार पर चलने के समान बता कर उसके महत्व को बरकरार रखते हैं। केवल जनसाधारण की सरलता एवं सुविधा के नाम पर वे भक्ति का समर्थन करते हैं—

**ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा ।।**

× ×

**राम भगति चिन्ता मनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ।।**

(3) **शैव-वैष्णव का समन्वय**—शिव-भक्त राम का विरोध और राम-भक्त शिव का विरोध करते थे । तुलसी के समय में यह विरोध चरम उत्कर्ष पर था । तुलसी ने 'मानस' में शिव तथा राम को निकट सम्पर्क में लाने का क्रान्तिकारी प्रयास किया—

**शिवद्रोही मम दास कहावा ।**

**सो नर सपनेहु मोहि न भावा ॥**

लिखकर तुलसी ने राम के मुख से शिव की जो प्रशंसा करवाई है, वह वास्तव में शिव और राम के भेद-भाव को समूल नष्ट करने वाली है ।

(4) **सगुण-निर्गुण समन्वय**—तुलसी के समय निर्गुण व सगुण भक्ति का भेद-भाव बढ़ा हुआ था । दोनों एक दूसरे को बड़ा मान रहे थे । तुलसी ने 'मानस' में इस विवाद को व्यर्थ साबित किया । उन्होंने कहा कि ईश्वर प्राप्ति के यह दो मार्ग है । इनमें कोई भेद नहीं हैं—

**अगुनहिं सगुनहि नहि कुछ भेदा । गावहि मुनि पुराण बुधु वेदा ।**
**जो गुन रहित सगुन सोई वैसे । जल हिम बिलग उपल नहीं जैसे ॥**

(5) **साहित्य सृजन में समन्वय**—तुलसी का साहित्य अपने युग की सभी प्रचलित काव्य पद्धतियों से समन्वित है । महाकाव्य, मुक्तक, गीति तीनों का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है । काव्य में सभी शैलियों—चारणों की छप्पय शैली, कबीर आदि की दोहा शैली, जायसी की दोहा चौपाई शैली, विद्यापति सूर आदि की पद-शैली और गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया शैली का सफल समावेश किया है । लोक भाषा ब्रज और अवधी को स्वीकार किया है । लोक भाषा में रचना करना पण्डित अपमान समझते थे, तुलसी ने उसमें भी क्रान्तिकारी काम किया । इस प्रकार तुलसी अद्भुत समन्वयवादी कवि थे ।

(6) **राम में शक्ति, शील और सौन्दर्य का समन्वय**—तुलसी ने राम में शील शक्ति और सौन्दर्य तीनों का समन्वय स्थापित किया है । कृष्ण में केवल रूप सौन्दर्य ही निखर सका और वह भी विशृंखलता और असंयम की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला, परन्तु राम का सौन्दर्य, शक्ति और शील सभी कुछ मानव समाज का कल्याण करने वाला है ।

तुलसी में समन्वय की अपूर्व क्षमता थी । उनके इसी गुण को लक्ष्य कर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है । लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, कथा और तत्वज्ञान का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय । रामचरित मानस आरम्भ से आखिर तक समन्वय का काव्य है और दर्शन तथा बुद्धि तथा तर्क का अद्भुत समन्वय है । इसलिए उनको विरोधी तत्वों में समन्वय स्थापन में सहायता मिली ।"

**प्रश्न 2. 'तुलसी भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवि हैं' इस कथन के आधार पर तुलसी की भक्ति भावना की विवेचना कीजिये ?**

**उत्तर**—भक्तिकाल में तुलसी का प्रादुर्भाव हुआ उस समय यहाँ की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में द्वेष भावना व्याप्त थी। जनता पथभ्रम हो रही थी। ऐसे समय में तुलसी ने अपनी राम-वाणी से अमृत की वर्षा की और भारतीय जन मानस के पथ-दर्शक बने। उन्होंने तत्कालीन सारी परिस्थितियों का अवलोकन किया और निष्कर्ष रूप में राम रूपी पारस मणी प्राप्त की। जन-मानस को जैसे—ईश्वर की आवश्यकता थी तुलसी ने राम को उसी रूप में प्रस्तुत किया। भले ही तुलसी ने राम काव्य स्वातः सुखाय लिखा हो, परन्तु वह परान्त सुखाय हो गया। राम उनके आराध्य थे। राम कण-कण में व्याप्त है। वे घट-घटवासी हैं। कबीर ने जिस राम को जनता के लिए दुर्लभ, कठोर याचना के उपरान्त बतलाया, तुलसी ने उसे ही भक्ति द्वारा सहज बताया। यद्यपि उनकी दृष्टि में निर्गुण सगुण ब्रह्म का कोई भेद न था। निर्गुण ब्रह्म ही भक्ति के प्रेम के कारण सगुण हो जाता है—

**सगुनहिं अगुनहिं नहिं कुछ भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।**
**अगुन अरुप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥**
**जो गुन रहित सगुन सोई कैसे। जल हिम उपल बिलग नहि जैसे॥**

किन्तु निर्गुण ज्ञान कठिन है। सर्व सुलभ नहीं है। उसका पथ नाना परेशानियों से भरा पड़ा है। जबकि सगुण मार्ग सरल, सुगम और सुबोध है।

भक्ति स्वतन्त्र और निरपेक्ष हैं ज्ञान और विज्ञान इसके अधीन हैं। भक्ति पर माया भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकती और राम की भक्ति के बिना उद्धार भी नहीं हो सकता। राम भक्ति से ही अन्धकार रूपी अज्ञान मिट जाता है और आत्मा मोक्ष को प्राप्त होती है।

कलयुग में तो मुक्ति का एक ही मार्ग है और वह है भक्ति। भक्ति भी राम की। मानव देह जो बड़ी मुश्किल से प्राप्त होती है, अगर उस देह द्वारा राम-भजन नहीं होता तो जीवन व्यर्थ है। मानव संसार में आकार विषय वासनाओं में लिप्त हो जाता है, वह अपने जन्म को व्यर्थ ही गंवाता है। इसलिए तुलसी ने राम भक्ति को ही महत्व दिया है। वे अपने परम मित्रों को भी त्यागने का उपदेश देते हैं यदि वे राम-वैदेही प्रिय न हों—

**जाके प्रिय न राम वैदे ही।**
**सो छांड़िये कोटि बैटी सम जद्यपि परम सनेही।**

तुलसी का समर्पण राम-भक्ति में ही था। उन्होंने अपने काव्य में नाना देवी देवताओं की स्तुति की है परन्तु वरदान स्वरूप राम-भक्ति ही माँगी उन्होंने हनुमान, लक्ष्मण, सीता आदि सभी से अनुरोध और दीनतापूर्वक भगवत् कृपा की याचना की है—

**कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।**
**मेरियो सुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ॥**

तुलसी की राम के प्रति अनन्य भक्ति है। वह भक्ति वैसी ही थी जैसी चातक की बादलों के प्रति होती है---

**एक भरोसो, एक बल एक आस विश्वास।**
**एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥**

भक्त तुलसी तो चातक की भाँति है कभी राम के दोषों को देखते ही नहीं। तुलसी लोक-कल्याण के हेतु ही चातक भक्ति को स्वीकार करते हैं। चातक बादलों से जल की याचना इसलिए नहीं करता कि इसकी प्यास मिट जाय वरन् इसलिए कि इस चराचर जगत् का कल्याण हो—

**जीव चराचर जहँ लगे हैं, सबको हित नेह।**
**तुलसी चातक मन बस्यो, घन सो सहज सनेह॥**

उदारता, शील और शरणागत वत्सलता राम के प्रधान गुण हैं, जिन पर समस्त भक्त समाज निछावर है। तुलसी भी राम की कृपा पाकर मोक्ष की आकांक्षा नहीं करते वरन् 'दृढ़ भक्ति' का वरदान और भक्ति-भावना का उत्तरोत्तर विकास प्राप्त करना—यही उनकी दृढ़ मनोकामना है। राम के प्रति असीम श्रद्धा और विश्वास था—

**ऐसो को उदार जग माँही।**
**बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥**

निष्कर्ष रूप में तुलसी की भक्ति में निम्न बातों का उल्लेख है—राम के गुणों के प्रति अनुरक्ति अहंकार नाश, संसार की नश्वरता का वर्णन, संसार में लोभ मोह तृष्णा का बन्धन, मन की मूढ़ता पर पश्चाताप, अन की शुद्धि पर बल, अपनी असहायता का वर्णन, मायायुक्त अज्ञान, राम नाम का महत्व, ईश्वर कृपा का वर्णन आदि। तुलसी साहित्य में उक्त बातें देखी जा सकती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में तुलसी भक्त के बारे में कह सकते हैं, "सारा देश विशृंखला, परस्पर विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी जो इस परस्पर विच्छिन्न और दूर विभ्रष्ट टुकड़ों में योग-सूत्र स्थापित करें। तुलसी का आविर्भाव ऐसे समय में ही हुआ।" तुलसी ने राम भक्ति के माध्यम से यह योग-सूत्र बैठाया।

**प्रश्न 3. रहीम के काव्य की विशेषताएँ अपने शब्दों में लिखिये।**

**उत्तर**—मुक्तक काव्य परम्परा में रहीम का प्रमुख स्थान है। रहीम कवि की दोहावली अत्यन्त प्रसिद्ध रही। रहीम की कविता में अनुभूति की तरलता, व्यंजना की कुशलता एवं भाषा की कोमलता मिलती है। रहीम काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्न रूपों में देखी जा सकती हैं।

**(1) सजीवता एवं मार्मिकता**—छोटी से छोटी बात को भी मार्मिक बना देने की कला में रहीम सिद्धहस्त थे। "बरवै नायिका भेद" में इसके खूब उदाहरण देखे जा सकते हैं। सीधी सादी भाषा में हृदय को बेधने वाली बात कह जाना इनकी अपनी ही शैली थी—चतुरता के संदर्भ में उदाहरण देखिये—

तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात।
होरी से त्यौहारन, पीहर जात॥

**(2) भक्ति भावना**—रहीम का हृदय मूलतः भक्त का हृदय था। इन्होंने अनेक विषयों पर काव्य लिखा परन्तु भक्ति को कभी नहीं छोड़ा। कृष्ण भक्त तो रहीम थे ही अन्य मतों के प्रति भी वे सहृदय थे। मुसलमान कवि होने पर भी भगवान कृष्ण के प्रति भक्ति भाव था। काव्य में अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं—

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है, माखन चाखनहार।

**(3) प्रेम-भाव**—प्रेम-भाव को लेकर विस्तृत रचना रहीम ने की है। 'बरवै नायिका भेद' में गोपियों और कृष्ण के प्रेम को लेकर अत्यन्त मनोहर चित्र अंकित किये हैं। प्रेम-भाव की अनन्यता और प्रिय के प्रति दृढ़ आस्था का भाव देखिये—

प्रीतम छवि नैनन बसीं, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिर जाय॥

**(4) ब्रज और अवधी भाषा का प्रयोग**—मुसलमान कवि होने पर भी ब्रज और अवधी के सिद्ध हस्त कवि थे। 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा का काव्य है। अन्य काफी काव्य ब्रज भाषा में हैं। वैसे फारसी, संस्कृत, तुर्की आदि भाषाओं का ज्ञान था। भाषा की समास शैली का गुण तो इनमें कूट-कूट कर भरा पड़ा था। दोहे जैसे छोटे से छन्द में एक दृश्य उपस्थित कर देते थे—

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम॥

**(5) मुक्तक काव्य**—रहीम ने मुक्तक काव्य शैली को ही अपनाया। दोहावली, बरवै नायिका भेद इसके सशक्त उदाहरण हैं। मुक्तक कवियों में रहीम का

स्थान प्रमुख है। दोहा छन्द को लेकर दोहावली की रचना की। बरवै छन्द इन्हो स्वयं ने निर्मित कर काव्य ही लिख दिया।

(6) भाषा की कोमलता—रहीम ने सीधी सादी कोमल भाषा का प्रयो किया। भाषा की कोमलता के कारण ही उनके दोहे जन-साधारण में प्रसिद्ध रहे रहीम के दोहे लोक में कहीं भी सुने जा सकते हैं—

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहि।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहि॥

(7) नीति के कुशल कवि—रहीम की पहचान हिन्दी काव्य में एक नीतिका के रूप में अलग ही देखने को मिलती है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है "रहीम के दोह वृंद और गिरधर के पद्यों के समान कोरी नीति के पद्य नहीं हैं, उनमें मार्मिकता है उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झांक रहा है।" नीति लेखन का इनका क्षेत्र विस्तृत है—कुछ उदाहरण—

ज्यों रहीम गति दीप की कुल कूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय॥
रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहि।
उनके पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं॥
जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिये, लेन कहाँ सूँ जाय॥
धन थोरो इज्जत बड़ी कहि रहीम का बात।
जैसे कूल की कुलबधू चिथड़न माँहि समात॥

रहीम के नीति दोहे केवल कल्पना की उड़ान नहीं हैं वे हृदय से निकले सच्चे उद्गार हैं।

रहीम महान कवि थे। मौलिकता उनका प्रमुख गुण था। काव्य शैली में भी वह अद्भुत थे। छन्द की दृष्टि से इन्होंने दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठा, बरवै, पद सब में थोड़ी बहुत रचना की है। रहीम कुशल कवि थे।

प्रश्न 4. रहीम के कृतित्व और व्यक्तित्व पर कुछ लेख लिखिये ?

उत्तर—रहीम अकबर के बाल्यकालीन संरक्षक बैरम खाँ के पुत्र थे। इनका जन्म सं. 1610 में हुआ। इनका स्वर्गवास 1683 सं. माना जाता है। रहीम को संस्कृत, अरबी, फारसी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं का ज्ञान था। दानी और परोपकारी जीव थे। वह अपने समय के कर्ण माने जाते थे। गंग कवि को एक बार छन्द पर छत्तीस लाख रुपये दे डाले थे। कोई भी रहीम के घर से निराश होकर नहीं लौटता था। इनकी सभा विद्वानों और कवियों से सुशोभित रहती थी। ये अकबर के समय में प्रधान सेना नायक थे। इन्होंने अनेक बड़े-बड़े युद्ध किये हैं।

रहीम जहाँगीर के शासन काल में भी विद्यमान थे। लड़ाई में धोखा देने के अपराध में जहाँगीर ने इनकी सारी जागीर जब्त कर कैद कर लिये गये थे। कैद से छूटने पर इनकी आर्थिक स्थिति काफी समय तक अच्छी नहीं रही। परन्तु अपनी दान प्रवृत्ति को इन्होंने छोड़ा नहीं। कहते हैं कि इसी दीन अवस्था में एक याचक ने इनसे दान की प्रार्थना की। रहीम ने एक दोहा लिखकर टीवाँ नरेश के यहाँ भेज दिया—

**चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेस।**
**जापर विपदा परति है सो आवत यहि देस।।**

और नरेश ने उसकी इच्छा पूरी की।

रहीम का तुलसी दास जी से भी बड़ा स्नेह था। तुलसी से मिलना व पत्र-व्यवहार आदि के प्रमाण मिलते हैं।

रहीम कवि होने के साथ साथ वीर योद्धा भी थे। रहीम ने जीवन में कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं। मुगल साम्राज्य के लिये न जाने कितने प्रदेश जीते थे। अपनी वीरता के कारण रहीम की जागीर में बड़े-बड़े सूबे और गढ़ मिले थे।

रहीम ने अनेक ग्रन्थों की रचना की इनके ग्रन्थ निम्न हैं—दोहावली, बरवै नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्ठक, रासपंचाध्यायी, नगर शोभा आदि। इनके अलावा कुछ फुटकल कवित्त भी मिलते हैं। दोहावली नीतिपूर्ण दोहों का संग्रह है। 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा की सुन्दर कृति है।

रहीम कई भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत, अरबी, फारसी, ब्रज, अवधी आदि। 'वाकयात बाबरी' का रहीम ने तुर्की से फारसी में अनुवाद किया। 'खेट कौतुकम्' ज्योतिष ग्रन्थ संस्कृत और फारसी में लिखा है। भाषा पर रहीम का पूरा अधिकार था।

रहीम दोहों के कारण सर्व साधारण के प्रिय कवि रहे परन्तु इन्होंने बरवै, कवित्त, सवैया, सोरठ पद आदि सब में थोड़ा बहुत लिखा है। इन्होंने संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं।

रहीम का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न था। इन्होंने भक्ति, ज्ञान, नीति और शृंगार का समन्वित स्वरूप अपने काव्य में प्रस्तुत किया।

प्रश्न 5. मीराँ की विरहानुभूति की मार्मिकता पर प्रकाश डालिए?

**अथवा**

**मीराँ के विरह वर्णन की विशेषताओं का सोदाहरण वर्णन कीजिये?**

**उत्तर**—मीरां भक्तिकाल की कृष्ण शाखा की प्रमुख भक्त कवयित्री थी। मीरां के आराध्य कृष्ण थे। अपना सारा जीवन कृष्ण वियोग में व्यतीत किया। वह विरह की शमा थी जो जीवन भर जलती रही। विरह वेदना से व्याकुल होकर ही सूर के पदों में राधा, गुप्तजी के साकेत में उर्मिला जायसी काव्य में नागमती और मीरा स्वयं

अपने ही पदों में रोई है। मीराँ ने अपने सीधे सादे पदों में हृदय की वेदना को व्यक्त किया है। मीराँ की करुणा वेदना आज राजस्थान के कण-कण में व्याप्त है।

(1) मीराँ के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हो गया था। बचपन में किसी की शादी को देख बालिका मीराँ ने माँ से पूछा था, माँ मेरा पति कौन है? माँ ने जवाब दिया—कृष्ण। तब से ही वह कृष्ण को अपना पति मान बैठी थी। कृष्ण पति की प्राप्ति हेतु मीराँ ने घर-परिवार राज-सुख सब छोड़ दिया। सदैव कृष्ण की चाह की—

पिय म्हारा नैणाँ आगे रहिजो जी।

कृष्ण से मिलने के लिए मीराँ सदैव बेचैन रहती थी। वह रात-दिन आंखों में आँसू बहा, प्रियतम की बाट जोहती थी—

कोई कहे हरि आवन की, आवन की मन भावन की।
एह दो नैण कह्यो नहि माने, नदिया बहे जैसे सावन की।।

(2) मीराँ के विरह वर्णन में विप्रलम्भ के अंग-पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा का चित्रण किया गया है। प्रधानता विरह-वेदन की ही मिलेगी। वह चिर वियोगिनी है। संसार में उसे कोई भी धैर्य बँधाने वाला नहीं है। प्रवासी पति कृष्ण के वियोग में रो-रो कर आँखें नष्ट कर ली है। वह असहाय हो रो पड़ती है—मीराँ व्याकुल विरहिणी री तुम बिन तलफत प्राण।

विरह में वह जायसी की नायिका की भाँति आध्यात्मिक नहीं, वह साधारण नारी के समान है। विरह उसे वैसी ही पीड़ा देता है जैसे किसी ग्रामीण नारी को पीड़ा देता है—

सावण आवण कह गया हे हरि आवण की आस।
रैन अंधेरी बिजु चमकै तारा गनत निरास।।

(3) मीराँ के विरह में आकुल आकांक्षाओं, वेदना और विवशता के अनेक सुन्दर चित्र मिलते हैं।

हे री मैं तो दरद दीवानो मेरो दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै की जिण लाई होय।।

'मेरो दरद न जाणै कोय' में तो मानों युग-युग की विरहिणी नारी की अकथ्य वेदना ही घनीभूत हो उठी है।

आकुलता का दृश्य—जोगी मत जा, मत जा पाँय पंरू में तेरी चेरी हो।
प्रेम भक्ति को पैडों ही न्यारो, हमें गैल बता जा।
आन्तरिक वेदना देखिये—दास बिना दुखण लाग्या नैण।
सबदा सुणता मेरी छतियाँ कांपो मोठो थारो बैण।।

इस तरह के विरह-विदग्ध चित्र मीरां काव्य में सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। प्रियतम कृष्ण के अभाव में सारा देश ही सूना लगता है। प्रिय से मिलाने वाले को वह सर्वस्व देने को तैयार है—

> प्रिय बिनु सूनो है म्हारो देश
> ऐसा है कोई पिव कुं मिलावे, तन-मन करूं सब पेश।

विरह वेदना के अतिरिक्त विरह जन्य स्थितियों का चित्र भी मीरां काव्य में मिलते हैं। जैसे—

> ए वो नैण कह्यो नहीं मानें नदियां बहे जैसे सावन की।

एक तो नारी हृदय वैसे ही कोमल, भाव प्रधान और अनुभूतिशील होता है तथा फिर बाल्यकाल के संस्कार, यौवन में असामयिक प्रिय वियोग, सन्तों का सत्संग और तदन्तर ये दुखद घटनाएं—ये सब कुछ मीरां के भाव-जगत को उभारने और झंकृत कर देने के लिए पर्याप्त थे। मीरां की प्रणय वेदना भक्ति के पवित्र रंग में मिश्रित होकर विरह के शत-शत स्वरों में बरसी है।

(4) मीरां की आन्तरिक वेदना ने उसे उन्मादिनी सी बना दिया है। वह स्वप्न में कृष्ण से मिलती है, जागने पर प्रिय के न मिलने पर भ... दुःखी होती है। एक क्षण के मिलन हेतु वह तरसती है। प्रिय के न मिलने पर वियोगिनी चिन्ता में जलकर भस्म होने के लिए तत्पर है—

> अगर चंदन की चिता बणाऊं अपने हाथ जला जा।
> जल बल भई भस्म की ढ़ेरी, अपणे अंग लगा जा।
> मीरां कहें प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा।

(5) मीरां का विरह भक्ति परक है। उसमें कोई सांसारिक लालसा नहीं है। कृष्ण का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का है।

(6) मीरां के विरह में लोक संस्कृति का प्रभाव है। तीज और गणगौर राजस्थान के सर्वप्रथम सांस्कृतिक त्यौहार हैं। मीरां के पदों में इनका चित्रण है। उसे पपीहे का बोलना बुरा लगता है, वह खीज कर कहती है—

> पपइया रे पिव की वाणि न बोल।
> सुणि पावेली बिरहिणी रे, थारी राखेली पांख मरोड़।
> चोंच कटाऊं पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
> पीव मेरा में पीव की रे, तू पिव कहै सू कूण।

(7) मीरां का प्रेम जन्म-जन्मान्तर व्यापी है। वह जन्म-जन्म से कृष्ण के साथ है और इस जन्म में भी उसे ही पाना चाहती है। कृष्ण के अलावा उसे और किसी की छवि मन में अच्छी लगती ही नहीं। कृष्ण को ही चाहती है—

घड़ी एक नहीं आवडै, तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, का सूँ जीवण होय ।।

× ×

पंथ निहारूँ उगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोइ ।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियां सुख होइ ।।

और निश्चय ही मीरां कृत-काम हो गई । उसकी जन्म-जन्मान्तर की साध पूरी हुई । वह अपने प्रियतम के चिर सामीप्य को प्राप्त हुई ।

इस तरह मीरां की विरह वेदना हिन्दी साहित्य से अपना विशिष्ट स्थान रखती है । मीरां कृष्ण-प्रेम में जलती विरह की एक ऐसी ही वर्त्तिका थी जिसका ज्वलन ही उच्छ्वास बनकर उसके गीतों में फूट पड़ा तथा जो उसी उच्छ्वसित संगीत की आग अपने प्राणों में दबाए गीत गाती ही प्रिय चरणों में निश्शेष हो गई ।

**प्रश्न 6. मीरां की भक्ति पद्धति पर एक सारगर्भित लेख लिखिये ?**

**उत्तर**—मीरां मूलतः भक्त ही थी । परन्तु मीरां के समस्त व्यक्तित्व और काव्य में नाथ पंथी जोगी, सगुण कृष्ण और निर्गुण ब्रह्म से सम्बन्धित अभिव्यक्ति की मिली-जुली त्रिवेणी बह रही है । इतना होने पर भी मीरां के आराध्य कृष्ण ही थे । उनको किसी सम्प्रदाय विशेष में नहीं रखा जा सकता । तत्कालीन प्रचलित मत-मतान्तरों का प्रभाव जरूर मीरां के काव्य पर पड़ा ।

**प्रेमाभक्ति**—डॉ. शम्भूसिंह मनोहर के अनुसार 'मीरां के काव्य का मूल स्वर प्रेम है एवं उसके एक मात्र आलम्बन हैं भी कृष्ण । भक्तों की शब्दावली में उसे प्रेमाभक्ति अथवा माधुर्य उपासना की संज्ञा दे सकते हैं ।' मीरां की भक्ति पर चैतन्य महाप्रभु की माधुर्य भक्ति और माधवेन्द्रपुरी की गोपाल पूजा का भी प्रभाव पड़ा । मीरां का कृष्ण के प्रति प्रारम्भ से ही आकर्षण था । वह अपने आपको प्रभु के चरणों में समर्पित कर चुकी थी—

मैं तो नारायण की हो गई आपहि दासी रे ।'

कृष्ण को उन्होंने अपना पति ही माना और इसलिए मीरां की भक्ति में दाम्पत्य प्रेम का भाव देखा जा सकता है । प्रेम-भक्ति के कितने ही उदाहरण मीरां के काव्य में मिल सकते हैं—

मैं बिरहणि बैठी जागूं, जगत सब सोवै री आली ।
बिरहणि बैठी रंगमहल में, मोतियन की लड़ पोवै ।।
इक बिरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन माला पोवै ।

**दासी भाव**—मीरां ने कृष्ण को अपना पति माना है परन्तु इसके साथ अपने को दासी भी माना है । भक्त-कवियों ने अपने आराध्य को स्वामी और स्वयं को दास

रूप में चित्रित किया है। तुलसी, कबीर, सूर आदि कवियों में यह भाव देखा जा सकता है। मीराँ हर समय और हर प्रकार से कृष्ण की सेवा करना चाहती है और यही मनुहार करती है कि—

म्हाने चाकर राखो जी, गिरधारी म्हाने चाकर राखो जी।
चाकर रहस्यू बाग लगास्यू नित उठ दरसण पास्यू।
बिन्द्रावन की कुंज गलि में गोविन्द लीला गास्यूँ।

यह समर्पित भाव था मीराँ का। दास्य भाव में अपना पूर्ण अधिकार स्वामी पर जमा लेती थे।

(3) **मुक्ति के स्थान पर मिलन की आकांक्षा**—मीरां की अपने आराध्य एवं पति से मिलने की प्रबल इच्छा थी। मिलनानन्द के आगे मुक्ति को छोड़ सकती थी। कृष्ण से मिलने के लिए बड़ा से बड़ा कष्ट पा सकती थी। मुक्ति के लिए कोई आग्रह नहीं था। कृष्ण की इच्छा है कि वे चाहे तो उद्धार कर दें—

थे सुणो दयाल म्हारी अर्जी।
भव सागर में बही जात हूँ।
काढो तो थारी मरजी।

कृष्ण से मिलने के लिए मीराँ सब कुछ करने को तैयार व आतुर थी—

कहो कुसुम्भी साड़ी रंगाऊँ कहो तो भगवा भेष।
कहो तो मोतियन मांग भराऊँ। कहो छिटकाऊँ केस॥

मीरां ने कृष्ण को जन्म जन्मान्तर से पति माना था। उसके जीवन में कृष्ण के अलावा किसी की मूर्ति भी न थी। इसलिए लोकलाज छोड़ कृष्णमय हो गई थी।

(4) **नाथ मत का प्रभाव**—मीरां की भक्ति पर नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव था। काव्य में सतगुरु, जोगी, जोगियां शब्दों के प्रयोग से यह बात स्पष्ट हो जाती है। "जोगी मत जा, मत जा; पाँव पड़ूँ मैं तेरे।"

डॉ. श्री कृष्ण लाल लिखते हैं, "मीरां के गिरधर नागर का एक दूसरा स्वरूप योगी का है। उस योगी की खोज में मीरां ने भी योग लिया है।

(5) **सन्तों का प्रभाव**—नाथों की ही भांति मीरां की भक्ति भावना पर सन्तों का प्रभाव भी पड़ा है। डॉ. श्री कृष्ण लाल ने लिखा है—"उनका पहला स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का है जो कबीर, नानक आदि संत कवियों के निर्गुण, निराकार ब्रह्म के निकट जान पड़ता है। वह दूर ऊँचे महल का रहने वाला है।" कुछ पद ऐसे मिलते हैं जिनमें सन्त मत का प्रभाव—

चरन-कंवल अविनासी।
इस देही का गरब न करणां माटी मां मिल जासी॥

डॉ. पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल वाल का भी मत है, "यह सच है कि उनके कहे जाने वाले पदों में निर्गुण विचारधारा स्पष्ट दिखती है। उन्होंने अपनी प्रेम सम्बन्धी विनय कृष्ण एवं ब्रह्म दोनों के प्रति एक साथ की।"

(6) अद्वैतवाद का प्रभाव—अद्वैतवाद का प्रभाव भी मीरां की भक्ति पर देखा जा सकता है। सन्त प्रभाव में ही यह सब समाहित है। कई जगह मीरां ने ईश्वर के लिए अविनाशी, निर्गुण, निरंजन आदि शब्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण के साथ होली खेलन में 'अनहद' की झंकार सुनी है–

फागुन के दिन चारि रे, होली खेल मना रे।
बिन करताल परवावज बाजै, अनहद की झणकार रे।
बिन्हु सुर राग छतीसूं गावैं, रोम रोम रंगसार रे।

कुछ विद्वान जैसे पंडित विश्वनाथ प्रसाद, डॉ. श्री कृष्ण लाल आदि ने मीरां की भक्ति पर सूफी प्रभाव भी बतलाया है। सूफी काव्य में ईश्वर को पत्नी व जीव को पति मानकर जिस उपासना का विकास हुआ। उस भक्ति का मीरां को दाम्पत्य भक्ति में तलाश करना अज्ञान का सूचक ही है।

मीरां शुद्ध रूप से भारतीय वैष्णव कवयित्री थी। उसकी भक्ति भावना प्रेम पर आधारित थी। उसके आराध्य कृष्ण थे। मीरां की भक्ति पर किसी विदेशी प्रभाव को थोपना अच्छा नहीं है। मीरां का किसी पन्थ विशेष के प्रति विशेष आग्रह न था। इसी बात के समर्थन में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "इस प्रकार उनका (मीरां) सम्बन्ध एक तरफ तो सगुण मार्गी भक्तों से सिद्ध होता है और दूसरी ओर निर्गुण मार्गी भक्तों से भी उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है, फिर उनके भजनों में किसी ऐसे गुरु की भी चर्चा आती है, जो नाथ पन्थी साधु जान पड़ते हैं। इन सब बातों का एक ही निष्कर्ष निकल सकता है कि मीरां बाई अत्यन्त उदार मनोभावापन्न भक्त थी। उन्हें किसी पन्थ विशेष पर आग्रह नहीं था।"

प्रश्न 7. लोक गाथाँ किसे कहते हैं? उसकी विशेषताएँ बतलाते हुए सिद्ध कीजिये कि 'ढोला मारु रा दूहा' एक लोकगीत है।

उत्तर—'लोक गाथा' लोक प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध की समस्त शास्त्रीय विशेषताएँ लोकगाथा में मिलती है। इन सभी विशेषताओं के अतिरिक्त लोकगाथा लोकमानसीय तत्वों-चरित्र नायक का सम्पूर्ण जीवन, गेयता, लोकादर्श, रस प्रवाह, मौखिक रूप एवं अकृत्रिम अभिव्यक्ति से युक्त होती है। 'ढोला मारु रा दूहा' इस से सफल लोक गाथा है। इसकी विशेषताएँ निम्न हैं—

(1) अनगढ़पन—गाथाकार अभिव्यक्ति को अलंकार आदि के बन्धन में सप्रयास नहीं बांधता, गाथा में भावों का मनोमुग्धकारी, स्वच्छंद प्रवाह होता है। मारवणी ने स्वप्न में प्रिय को देखा, स्वप्न टूटने के साथ ही मिलन भी समाप्त हो

गया। जागते ही वह नि.श्वास लेने लगी, व्याकुल हो गई। इस स्थिति को गाथाकार ने स्पष्ट, सार्थक ढंग से व्यक्त किया है, अलंकार विहीन तीखापन देखिये—

**असइ आसवइ मारुनी सूती सेज बिछाइ।**
**साल्ह कुँवर सुपनइ मिल्यउ, जागी निसासउ खाइ।**

(2) लोकगाथा जनता का जनता के लिये और जनता द्वारा निर्मित लोकप्रिय काव्य होता है। मानव जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। ढोला मारु में यह भावभूमि है 'प्रेम'। इसमें एक निष्ठ और आदर्श प्रेम की तीव्रता का वर्णन किया गया है।

(3) **अनुश्रुति काव्य**—ऐसे काव्य जनमानस में मौखिक रूप में मिलते हैं। इनका लिपिबद्ध रूप नहीं होता। गायन रूप में समाज में व्याप्त होता है। यह रूप आगे से आगे सुनते-सुनते चलता रहता है। 'ढोला मारु' लोकगाथा कुशल लाभ द्वारा लिपिबद्ध किये जाने से पूर्व भी जीवित थी और आज भी है।

(4) **संगीतात्मकता** – गेयता लोकगाथा का धर्म है। लय, ताल और राग के कारण ही यह जिन्दा रहती है और सर्वव्यापी हो जाती है। 'ढोला-मारु' भी गेय काव्य है।

(5) **अज्ञात रचयिता**—अनुश्रुति काव्य होने के कारण रचयिता अज्ञात होता है। गाथा का कोई एक लेख नहीं होता है। गाथा में लेखक का नाम परिचय नहीं होता है। 'ढोला मारु' काव्य का रचयिता अज्ञात है, लिपिबद्ध कर्त्ता का नाम तो ज्ञात है। कुशल लाभ संग्रहकर्त्ता था लेखक नहीं।

(6) **ऐतिहासिकता का अभाव** – लोकगाथा, कल्पना, श्रुति, इतिव्रत एवं अनुरंजना पूर्ण रचना होती है। ऐतिहासिक, अनैतिहासिक सभी प्रकार के पात्र व घटनाएँ होती है। गाथा को रोचक बनाने के लिए कल्पना का अत्यधिक प्रयोग होता है।

(7) **जन-भाषा का प्रयोग**—गाथाकार अपनी रचना को गा कर सुनाता है। अत: प्रचलित जन-भाषा का प्रयोग होता है। इसकी भाषा कभी प्राचीन नहीं पड़ती। वह चिर नूतन बनी रहती है। 'ढोला मारु' का गेय रूप कुछ और था, लिपिबद्ध दूसरा है। आज भी जो गाते हैं उनकी भाषा का रूप अलग है।

(8) **नाट्य एवं अभिनेय गुणों से युक्त होना**–लोकगाथा में नाट्य या अभिनय सम्बन्धी गुण जैसे हाव-भाव, प्रदर्शन तथा नृत्य आदि सभी हैं इन गुणों के कारण ही उसमें सहज आकर्षण होता है और लोक में प्रचलित होती है।

लोकगाथा के इस विवेचन के आधार पर 'ढोला मारु' को परखने पर वह उतरता है। इसमें ढोला के जीवन का सांगोपांग वर्णन है। मूलत: वह प्रेम काव्य

है। यह काव्य गेय है, राजस्थानी मांड में गाया जाता है। लोकमानसीय तत्व — आत्म शीलता, पशु-पक्षी का बोलना, आदि भी इसमें है। प्रादेशिक विशेषताएँ भी देखी जा सकती है। सहज रस प्रवाह के सम्बन्ध में भी दो राय नहीं है।

अत: 'ढोला मारु' लोकगाथा है। सभी तत्वों का इसमें समावेश है। राजस्थान में लोकगाथाओं में इसका प्रमुख स्थान है।

**प्रश्न 8. पठित अंश के आधार पर मारवणी के विरह वर्णन की मार्मिकता का वर्णन कीजिये ?**

**उत्तर**—'ढोला मारु रा दूहा' राजस्थानी का प्राचीन काव्य है। यह एक प्रेम गाथा है ढोला-मारवणी-मालवणी तीनों का प्रेम दिखाया गया है। मारवणी पूंगल के राजा पिंगल की पुत्री थी। बचपन में ही मारु का विवाह साल्ह कुँवर (ढोला) से हो जाता है। यौवनावस्था प्राप्ति के साथ मारु के विरह का उदय होता है।

मारवणी युवास्था को प्राप्त हो गई। मन में कामदेव का आगमन हो रहा है, परन्तु अनजान समझ नहीं पाती कि क्या किया जाय अपने प्रेम का आधार साल्ह कुँवर को स्वप्न में देखती है, आनन्द को प्राप्त होती है, आँख खुलने पर स्वप्न भंग होता है, ढोला बिछुड़ने पर नि:श्वास छोड़ती है —

**असइ आखरड़ मारवी सूनी सेज बिछाई।**
**साल्ह कुँवर सुपनइँ मिल्यउ जागि निसायउ खाई।**

मारु विरह विदग्धा हुई। खाना-पीना हराम हो गया। उसे कुछ भी नहीं सूझता। प्रिय की प्रतिक्षा में महल के ऊपर चढ़कर पंथ निहारती है। एक-एक पल प्रिय के अभाव में बिताना मुश्किल हो गया, वह दिन गिनती है —

**थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारु आसा लुब्ध।**

प्रकृति मानव का सम्बन्ध आदि काल से रहा है। मानव मन के मनोभावों पर प्रकृति का अनुकूल प्रभाव पड़ता। विहिणी मारु को प्रकृति का प्रफुल्ल रूप भी खिन्न बना देता है। घुमड़ते मेघो को देख दु:खी हो जाती है, आंखों से आंसू उमड़ आते हैं—

**उनमियउ उत्तर दिसइ, गाज्यउ गुहिर गंभीर।**
**मारवणी प्रिय संभरयउ नयण बूठ नीर॥**

मारवणी को कामदेव सताता है। प्रियतम बिना व्याकुल है। पपीहे के समान पिउ-पिउ पुकारती है। प्रिय के अभाव में पपीहे का पिउ-पिउ बोलना अच्छा नहीं लगता। वह पपीहे पर नाराज हो जाती है उसे उपालंभ देती है—

**बाबहिया निल पंखिया बोलइ मधुरी बांणि।**
**प्रिय मेरा मइं पीउ की तू पिउ कहइ स कूण॥**

वर्षा का आगमन है, उल्लसित मयूर नृत्य कर रहे हैं, यौवन उन्मत्त हो रहा है, पर प्रिय नहीं आये। वर्षा में प्रिय अभाव, विधाता का दिया दूना दुःख है। विरहिणी बादल से निवेदन करती है कि तू धीरे-धीरे गरज, नहीं तो मेरे प्राण ही उड़ जायेंगे—

**बिज्जलियाँ नीलज्जियाँ, जलहर तूँ ही लज्जि।**
**सूनी सेज विदेस पिव, मधुरई मगुरइ गज्जि॥**

कितनी व्यथा है मारवणी के हृदय में। 'सूनी सेज विदेश पिव' कहना, हृदय को बेध डालता है।

रात में सारस पक्षी अपनें साथी से बिछुड़ विकल ध्वनि कर रहा है, मारवणी को उसमें अपना ही दुःख दिखाई देता है, – जोड़ी से बिछुड़कर कौन सुखी रह सकता है—

**राति जु सारस कुरलिया गुंजि रहे सब ताल।**
**जिण की जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल॥**

मारु विवश है। प्रिय से कैसे मिले। पंख होते तो उड़कर मिल आती। वह कुरझों से निवेदन करती है कि मुझे पंख दे दो, मैं प्रिय मिलन के बाद वापस दे दूँगी –

**कुँझाँ पउ नइ पंखड़ी, थाँकउ विनउ वहेसि।**
**सायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मोलि पाछी देसि॥**

कुरझां के पंख न देने पर, सन्देश भेजने के लिए निवेदन करती है कुरझां पंखों या संदेश लिखने की बात कहती है –

**प्रिय संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखड़ियाँ ह।**

वह कौए से भी निवेदन करती है कि अगर प्रिय से मिला दे, तो खाने को कलेजा निकाल कर देगी –

**कउआ दिऊँ बधाइयां, प्रीतम मेलइ मुज्झ।**
**काढ़ि कलेजउ आपणउ भोजन दिउँली तुज्झ।**

मारवणी, प्रिय विरह में विकल है। ढोला के न आने पर नटवर ढाढियों के हाथ संदेश भेजे जाते हैं। वह कहलवाती है कि हे ढढ़ियों कहना कि वह स्त्री विरह में जल कर कोयला हो गई है, अब भस्म ढूँढ़ने तो आओ। फिर कहती हैं कि मारवणी के प्राण तो तुम में ही है। उसकी आंखें सीप के समान स्वाति जल की प्यास में आशा लगाये बैठी हैं –

**ढाढी जे साहिबा मिलइ, यूँ दाखविया जाइ।**
**आख्यां सीव विकासियाँ, स्वाति, जबरसउ आइ॥**

कभी यौवन का लोभ देती है—

**जोवण कमल विकासियउ, भमर न वइसइ आइ ।**

× × ×

**जोबन जायइ प्राहुणउ, बेगइरऊ घर आय ।**

वह किसी भी बहाने से प्रियतम को बुलाना चाहती है, कभी लुभाती है, कजली तीज पर न आने पर मरने की धमकी देती है—

**जइ तूँ ढोला नावियउ काजलिया री तीज ।**
**चमक मरेसी मारवी, देख खिवंता बीज ॥**

मारवणी के उद्‌गार हृदय को बेधने वाले स्वाभाविक है, अतिरंजना कहीं नहीं है । हिन्दी साहित्य में इस विरह वर्णन का अपना ही महत्व है ।

———

## होटल प्रबन्ध भोजन व्यवस्था तथा पोषाहार संस्थान

पूसा, नई दिल्ली-110012

निम्नांकित पदों के लिए उपयुक्त उम्मीदवारों से आवेदनपत्र आमंत्रित किये जाते हैं :

**2. वरिष्ठ अनुदेशक-सह-अनुरक्षण इन्जीनियर :**

का./अ.ज.जा. के उम्मीदवारों को तीन वर्ष की छूट मिलेगी.

**अनुभव :** 5 वर्ष शिक्षण या उद्योग का.

**योग्यता :** (पद संख्या 1 के लिए) ।

**अनिवार्य :** स्नातक तथा प्रबन्ध में डिप्लोमा/डिग्री कम से कम द्वितीय

...ार मकान किराया भत्ता.

...त विश्वविद्यालय से जैविक विज्ञानों और ...ी या समकक्ष. (ii) पादप आणविक जीव... ऊतक संवर्धन, ऊतक संवर्धन द्वारा जीव... ज्ञान, सूक्ष्मजीवविज्ञान और नाशिकीटों रोगों ...र फसलों की मिराई कार्यों में उत्तरदायी ...नुभव. विज्ञान और प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों के ...ठ पद पर होना चाहिए.

...प्त विश्वविद्यालय से संबंधित विज्ञान ... उच्च कोटि की तकनीकी क्षमता और ...युक्त संकल्पनाओं और प्रक्रियाओं की नवीन... ...री होनी चाहिए.

...है किन्तु इसके परियोजना अवधि ...वना है (ii) सरकारी कर्मचारियों और ... के लिए आयु-सीमा 5 वर्ष तक शिथिल... ...कारी संगठनों/सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों/ ...आवेदकों को अपने आवेदनपत्र उचित माध्यम ...पत्रों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा ... के बिना भेजे गए होंगे. फिर भी, वे अग्रिम ...ते हैं, किन्तु उन पर विचार आवेदनपत्र के ...पर किया जाएगा. (iv) आयु निर्धारण की ... आवेदनपत्र प्राप्ति की अंतिम तिथि है. ...हैं, पद के वेतनमान के नियमांतर्गत अनुमत्य ... देने पर विचार कर सकता है. (vi) ... उम्मीदवारों को यात्रा के प्रमाण या टिकट ...नुसार लघुत्तम मार्ग से, आने-जाने के द्वितीय ...र्ति की जायेगी. (vii) आवेदकों को भारत

(अ.जा./अ.ज.जा. के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित. अन्य व्यक्ति भी आवेदन कर सकते हैं).

रो.-100-4000 तथा भत्ते जो केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के समान होंगे. आयु : 25 से 40 वर्ष के भीतर. ...

...डिप्लोमा / विशेषज्ञताकृत होटल प्रबंध में पोस्ट डिप्लोमा.

... उम्मीदवारों को वरीयता दी जायेगी.

# अन्तरिक्ष विभाग

## भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन

### शार केन्द्र, श्रीहरिकोटा-524124 (आं.प्र.)

विज्ञापन सं. शार/आर/3/89

निम्नलिखित पदों के लिए आवेदनपत्र आमंत्रित किये जाते हैं :

**पद सं. : 12 स्नातकोत्तर शिक्षक (भौतिकी) :**

(एक पद) (अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित).

**ग्रेड :** रु. 1640-60-2000-द. रो.-60-2360-द. रो.-60-2600-75-2750-द. रो.-75-2900/- (कुल वेतन लगभग रु. 2198/-)

**अनिवार्य योग्यताएं :** (i) भौतिकी में कमसे कम द्वितीय श्रेणी की मास्टर डिग्री (जहां ग्रेडिंग/श्रेणी नहीं दी जाती 45% और उससे अधिक अंक समकक्ष माने जाते हैं). (ii) अध्यापन/शिक्षा में विश्वविद्यालय की डिग्री/डिप्लोमा अथवा एन.सी.ई.आर.टी. के क्षेत्रीय शिक्षा कालेज का दो वर्ष का एकीकृत स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम एम.एस-सी. एड. (iii) अंग्रेजी और हिन्दी दोनों के माध्यम से अध्यापन की सक्षमता.

**टिप्पणी :** प्रथम श्रेणी की मास्टर डिग्री और साथ ही प्रथम श्रेणी की स्नातक डिग्री वाले उम्मीदवारों के मामले में उक्त अनिवार्य योग्यता (ii) एक सीमित अवधि के लिए शिथिल कर दी जायेगी. ऐसे उम्मीदवार यदि चुन लिये गये तो वे दो वर्ष के लिए परीक्षण के आधार पर रखे जायेंगे और यदि उम्मीदवार अपने बस के बाहर के कारणों से दो वर्ष की निर्धा-...

**ग्रेड :** रु. 1200-30-1560-द. रो.-40-2040/- (कुल वेतन रु. 1608/-)

**न्यूनतम योग्यताएं और अनुभव :** (1) योगांक में न्यूनतम 55% ... साथ एस.एस.एल.सी./एस. एस-सी. के साथ किसी संस्था/संगठ... कारी विभाग में आशुटंकक/आशुलिपिक के रूप में एक वर्ष का अ... अथवा योगांक में न्यूनतम 50% अंक के साथ एस एस एल सी/ए... सी के साथ वाणिज्यिक/सचिवालयिक पद्धति में मान्यताप्राप्त ... राज्य तकनीकी शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रदत्त न्यूनतम दो वर्ष की अव... डिप्लोमा अथवा स्नातक होने के साथ टंकण और आशुलिपि में 4... 80 शब्द प्रति मिनट की गति से टंकण और आशुलिपिक में पास... का मान्यताप्राप्त केन्द्रीय/राज्य तकनीकी शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रदत्त ... पत्र. (2) उम्मीदवारों की न्यूनतम गति आशुलिपि में 80 शब्द प्रति... और टंकण में 40 शब्द प्रति मिनट रहनी चाहिए. अंग्रेजी पर अधिकार अनिवार्य है.

**पद सं. : 16 फायरमैन :**

(एक पद) (अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित).

**ग्रेड :** रु. 950-20-1150-द. रो.-25-1400/- (कुल प्रारम्भिक लगभग रु. 1273/-)

**न्यूनतम योग्यता और अनुभव :** आठवां स्टैंडर्ड पास. फायरमैन ... तीन वर्ष का अनुभव.

**शारीरिक अपेक्षाएं :** ऊंचाई : 5 फुट 6 इन्च; वक्ष : सामान्य 3... फुलाने पर 36 इन्च; वजन : 50 किलो से कम नहीं.

**सामान्य शर्तें :**

(1) आयु : क्रम सं. 12 और 13 के पदों के लिए 40 वर्ष, क्र... और 16 के पदों के लिए 35 वर्ष और क्रम सं. 15 के पद के ...